UTKAL UNIVERSITY
NAAC ACCREDITED A+

MASTER OF ARTS
IN HINDI

SEMESTER-II

प्राचीन हिंदी काव्य

CREDIT: 4

Paper - 2.1
BLOCK: 1,2,3 & 4

AUTHOR

Dr. Radhakant Mishra

C.D.O.E

ଦୂର ଓ ଅନ୍‌ଲାଇନ ଶିକ୍ଷା କେନ୍ଦ୍ର, ଉତ୍କଳ ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ
CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION
UTKAL UNIVERSITY

UTKAL UNIVERSITY
NAAC ACCREDITED A+
CDOE

ABOUT THE UNIVERSITY

Founded in 1943, Utkal University is the 17th University of the country and the first of Orissa. It is the result of the efforts of Pandit Nilakantha Dash, Maharaja Krushna Chandra Gajapati, Pandit Godavarish Mishra and many others who envisioned a progressive education system for modern Odisha.

The University started functioning on 27 November 1943, at Ravenshaw College, Cuttack. It originated as an affiliating and examining body but shifted to its present campus spread over 400 acres of land at Vanivihar in Bhubaneswar, in 1962.

A number of Postgraduate Departments and other centres were established in the University campus. There are presently more than two hundred general affiliated colleges under the University. It has eleven autonomous colleges under its jurisdiction, twenty-eight constituent postgraduate departments, 2 constituent law colleges and a Directorate of Distance & Continuing Education. It boasts of a centre for Population Studies, a School of Women's Studies, an Academic Staff College, a pre-school and a high school. The University also offers a number of self-financing courses.

NAAC accredited in its 3rd cycle with A+ status in 2023. It is a member of the Indian Association of Universities and the Commonwealth Association of Universities.

CENTRE FOR DISTANCE & ONLINE EDUCATION
UTKAL UNIVERSITY: VANI VIHAR
BHUBANESWAR:-751007

From the Director's Desk

The Centre for Distance and Online Education, originally established as the University Evening College way back in 1962 has travelled a long way in the last 52 years. **'EDUCATION FOR ALL'** is our motto. Increasingly the Open and Distance Learning institutions are aspiring to provide education for anyone, anytime and anywhere. CDOE, Utkal University has been constantly striving to rise up to the challenges of Open Distance Learning system. Nearly one lakh students have passed through the portals of this great temple of learning. We may not have numerous great tales of outstanding academic achievements but we have great tales of success in life, of recovering lost opportunities, tremendous satisfaction in life, turning points in career and those who feel that without us they would not be where they are today. There are also flashes when our students figure in best ten in their honours subjects. Our students must be free from despair and negative attitude. They must be enthusiastic, full of energy and confident of their future. To meet the needs of quality enhancement and to address the quality concerns of our stake holders over the years, we are switching over to self instructional material printed courseware. We are sure that students would go beyond the course ware provided by us. We are aware that most of you are working and have also family responsibility. Please remember that only a busy person has time for everything and a lazy person has none. We are sure, that you will be able to chalk out a well planned programme to study the courseware. By choosing to pursue a course in distance mode, you have made a commitment for self improvement and acquiring higher educational qualification. You should rise up to your commitment. Every student must go beyond the standard books and self instructional course material. You should read number of books and use ICT learning resources like the internet, television and radio programmes etc. As only limited number of classes will be held, a student should come to the personal contact programme well prepared. The PCP should be used for clarification of doubt and counseling. This can only happen if you read the course material before PCP. You can always mail your feedback on the course ware to us. It is very important that one should discuss the contents of the course materials with other fellow learners.

We wish you happy reading.

DIRECTOR

Centre for Distance and Online Education, Utkal University, Bhubaneswar.

Program Name: Master of Arts in Hindi — Program Code: 010308

Course Name: Prachin Hindi Kavya — Course Code: HIN 2.1

Semester: II | Credit: 4 | Block No. 1 to 4 | Unit No. 1 to 16

EXPERT COMMITTEE: -

Dr. Smarapriya Mishra
Retd. Prof. from Ravenshaw University

Dr. Ravindranath Mishra
Retd. Prof. & former HOD,
Visva Bharati,Santiniketan

Dr. Snehalata Das
Reader in Hindi
Rama Devi Women's University , Bhubaneswar

Dr. Sudhansu Ku. Nayak
Retd. Reader, Berhampur University

COURSE WRITER:

Dr. Radhakant Mishra
Retd. Prof. from Utkal University

COURSE EDITORS:

Dr. Manju Modi
Retd. Reader in Hindi
S.B. Women's College, Cuttack

Dr. Laxmidhar Dash
Retd. Principal, HTTI, Cuttack

Dr. Pragyan Paramita
Faculty in Hindi, CDOE, Utkal University

PUBLISHED BY

Center for Distance and online Education(CDOE), Utkal University
Bhubaneswar-751007

M.A. (Hindi) Semester - II

PAPER - 5
प्राचीन हिंदी काव्य

Block No	Block	Unit No.	Unit
1	विद्यापति पदावली	1	विद्यापति की जीवनी एवं रचनाएँ
		2	वसंत खंड (पद- 1 से 25)
		3	वियोग खंड (पद- 1 से 10)
		4	विद्यापति की काव्यगत विशेषताएँ
2	पृथ्वीराज रासो	5	कवि चंद बरदाई
		6	रासो काव्य परंपरा
		7	पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता
		8	पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता
3	शशिव्रता विवाह	9	पृथ्वीराज रासो में महाकाव्यत्व
		10	शशिव्रता विवाह प्रसंग
		11	वीर और श्रृंगार रस
		12	काव्य की भाषा
4	चर्यागीति	13	बौद्ध - सिद्धों का परिचय
		14	चर्यापद का परिचय
		15	सिद्धों की विचारधारा
		16	चर्यागीति की विशेषताएँ

इकाई -1 (विद्यापति पदावली - वसंत खंड एवं वियोग खंड)

विषय सूची

1.1 विद्यापति की जीवनी

1.2 रचनाएँ

1.3 वसंत खंड

1.3.1. वसंत ऋतु का स्वच्छन्द वर्णन

1.4 वियोग खंड

1.4.1 वर्ण्य विषय

1.4.2 वियोग की विभिन्न दशाओं का वर्णन

1.5 कवित्व

1.6 विद्यापति की काव्यगत विशेषताएँ

1.6.1.प्रगीत काव्य

1.6.2.प्रकृति वर्णन

1.6.3.शृंगार रस

1.6.4.प्रेम का स्वरूप

1.6.5. रूपमाधुरी

1.6.6 विरह वर्णन

1.7. अभ्यास प्रश्न

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- प्राचीन हिंदी काव्य साहित्य को समझ सकेंगे ।
- रासो काव्य परंपरा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- सिद्धों की विचारधारा के साथ-साथ चर्यागीति की विशेषताएँ भी जान सकेंगे ।
- विद्यापति पदावली के माध्यम से प्राचीन काव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे ।

विद्यापति

1.1 विद्यापति की जीवनी :

विद्यापति के जीवन के संबंध में विद्वानों ने खोज और विचारपूर्वक जो रूप रेखा बताई है, वह उनकी रचनाओं में प्राप्त संकेतों और अन्य साक्ष्यों या जनश्रुतियों पर आधारित है । इन्हीं अन्त:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर विद्यापति का जीवन चरित इस प्रकार था -

* जन्म आदि :

बिहार के दरभंगा जिले के जरैल परगाना के विपसी ग्राम में प्रख्यात पंडित गणपति ठाकुर के पुत्र के रूप में विद्यापति का जन्म 1369 ई. को हुआ । उनके पितामह जयदत्त संत थे और योगेश्वर के नाम से विख्यात हुए । उनके प्रपितामह मैथिल ब्राह्मणों के उपदेष्टा थे । अतएव विद्यापति को काव्यप्रतिभा, पांडित्य आदि वंश - परंपरा से प्राप्त हुए । विद्यापति के कुछ सहपाठी भी बड़े विद्वान थे । उनकी संतान विद्याानुरागी थी । कवि थे । विद्यापति की पत्नी चन्दादेवी (या चंपती देवी) भी विदुषी, रूपवती और गुणवती थी । इस अनुकूल परिवेश का लाभ विद्यापति को मिला । उन्होंने अनेक रचनाएँ कीं । लगभग 85 वर्ष की आयु में 1448 ई. में उनका देहान्त हो गया ।

* राज्याश्रय :

विद्यापति के पूर्वजों का मिथिला के राजाओं से अच्छा संबंध था । विद्यापति का अधिकांश जीवन मिथिला के राजाओं के आश्रय में बीता । सभी राजाओं और रानियों ने विद्यापति का खूब आदर किया । परंतु राजा शिवसिंह से विद्यापति का घनिष्ठ संबंध रहा । विद्यापति शिवसिंह को साक्षात् नारायण और रानी लक्ष्मी देवी(लखिमा देवी) को लक्ष्मी मानते थे । शिवसिंह ने विद्यापति को विपसी ग्राम दिया । उन्हें 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित किया ।

1.2 रचनाएँ :

विद्यापति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मैथिली, ब्रजबुलि, बंगला और हिंदी के सुपंडित थे । उन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथ लिखे । उत्तर-अपभ्रंश या अवहट्ट में रचनाएँ कीं । ब्रजबुलि, हिंदी, मैथिली

में काव्य लिखे । उनकी निम्न चौदह रचनाएँ मिलती हैं -

1. कीर्तिलता, 2 कीर्तिपताका, 3. गया पत्तलक, 4. गंगावाक्यावली,

5. दान वाक्यावली, 6. दुर्गाभक्तितरंगिणी , 7, पुरुष परीक्षा, 8. प्रमाण भूव पुराण संग्रह,

9. पदावली, 10. भूपरिक्रमा, 11. लिखनावली, 12. विभव सागर, 13. वर्ष कृत्य,

14. शैव सर्वस्वसार ।

इनमें से कीर्तिलता, कीर्तिपताका अपभ्रंश में हैं और पदावली हिन्दी (मैथिली, ब्रजबुलि) में है । शेष ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं । उनमें कवि का पांडित्य प्रदर्शित है । बहुज्ञता का परिचय मिलता है । अनेक भाषाओं में अगाध ज्ञान होते हुए भी कवि की पसंद देशीभाषा है । निम्न छंद में उनकी मान्यता स्पष्ट है ।

सक्कअ वाणी बहुअ न भावई ।
पाउअ रस को मम्म न पावइ ॥
देसिल बयना सब जन मिट्ठा ।
तैं तैंसन जम्पओ अवहट्ठा ॥

(अर्थ - संस्कृत भाषा बहुतों को रुचिकर नहीं लगती । प्राकृत का मर्म लोग नहीं समझ पाते । देशीभाषा सबको मीठी लगती है । अतएव मैं उसीमें (अवहट्ठ=देशी) रचना कर रहा हूँ ।

नीचे प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है -

*** कीर्तिलता** - बड़ी चर्चा के बाद कीर्तिलता का रचनाकाल 1402ई. निर्धारित है । यह विद्यापति की सुप्रसिद्ध रचना है । एक ऐतिहासिक चरित काव्य है । इसमें महाराज कीर्तिसिंह की प्रशस्ति है । कीर्तिसिंह के राज्याभिषेक, युद्धाभियान में उनकी वीरता, दानशीलता, शासन क्षमता, कुशलता आदि का विस्तार से वर्णन दिया गया है । यह तत्कालीन भारत की राजनीतिक , सामाजिक परिस्थितियों का सजीव चित्र है । तथ्य और घटनाओं के सही वर्णन से कीर्तिसिंह की प्रशस्ति सत्य प्रमाणित होती है । युद्ध और चारित्रिक विशेषताओं के अंकन में तो कवि की निपुणता देखते ही बनती है । जौनपुर साम्राज्य इब्राहीम शाह शर्की के अधीन था । राजधानी जौनपुर का और तुर्की चरित्र का विशद और सुन्दर चित्रण कीर्तिलता में मिलता है । विद्यापति की रसिकता का परिचय उनके शृंगारिक प्रसंगों में मिलता है ।

काव्य का कथानक भृंग-भृंगी संवाद द्वारा शुरू होकर प्रश्नोत्तर पद्धति से सरसता प्राप्त करता है । अतिरंजित वर्णन नहीं है । ऐतिहासिक घटनाओं को ही सजाया संवारा गया है । इसलिए ऐतिहासिक चरित-काव्यों में कीर्तिलता का विशिष्ट स्थान है ।

इसकी भाषा उत्तरकालीन अपभ्रंश है । इसे स्वयं कवि ने 'देसिल वयन' और 'अवहट्ट' के नाम से पुकारा है । डॉ. शिवप्रसाद सिंह का कहना है कि गीतगायक विद्यापति की यह रचना वास्तवता के धरातल पर उतरना आश्चर्यजनक है । यह प्रबंधात्मक रचना भी भावावेग के क्षण, कल्पना की ऊँचाई, जीवन की निकटता, कटु-तिक्त-मधुर अनुभव अर्थात् जीवन इस काव्य में भरापूरा दिखता है ।

कीर्तिलता के काव्यत्व पर हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं -''कवि की लेखनी चित्रकार की उस तूलिका के समान नहीं है जो छाया और आलोक के सामंजस्य से चित्रों को ग्राह्य बनाता है । बल्कि उस शिल्पी की टाँकी के समान है जो मूर्तियों को भीत्ति-मात्र से उभार देता है । हम उत्कीर्ण मूर्ति की ऊँचाई - नीचाई का पूरा-पूरा अनुभव करते हैं ।'' अलंकार और छंद योजना अनुपम है ।

* कीर्तिपताका :

इस कृति में महाराज शिवसिंह की कीर्ति का विस्तृत वर्णन मिलता है । आरंभ में 'चन्द्रचूड़' अर्द्धनारीश्वर की रूप -अर्चना तथा गणेश -वन्दना है । प्रेमऔर शिवसिंह के आचरण का आकर्षक वर्णन है । इसमें कई भाषाओं का प्रयोग है । मध्य में संस्कृत बहुल पदों का समावेश है । फिर मैथिली भाषा का प्रयोग है । अनेक छंदों में तद्भव शब्दों से सुन्दर पदावली है । इसकी एक प्रति राज पुस्तकालय, नेपाल में सुरक्षित है ।

* पदावली :

विद्यापति की प्रसिद्धि उनकी पदावली के कारण हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक है । यह विभिन्न समय में लिखे गए मुक्तक पदों का एक संकलन है, जो लोक भाषा मैथिली में लिखी जाती रही है ।कुछ लोग इसे ब्रजबुलि कहते हैं । लगता है विद्यापति ने जयदेव के 'गीतगोविन्द' से प्रभावित होकर मधुर और कोमलकान्त पदों में विभिन्न रागों में गाने के लिए इसे लिखा है । इस कृति के माधुर्य और गेयता के कारण विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' कहा गया है और इस पदावली को हिन्दी गीत परंपरा में विशेष स्थान मिला है । इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ नेपाल दरबार के पुस्तकालय में संरक्षित हैं । इसके कई संस्करण निकले हैं । पदों की संख्या सबमें समान नहीं है । सर्वाधिक संख्या नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में 245 है ।

* वर्ण्य विषय :

पदावली भिन्न-भिन्न समय में लिखी गई है । इसलिए इसके विषय हैं -

1. भक्ति, 2. शृंगार,3. विविध । भक्ति संबंधी पद शिव, गौरी, दुर्गा, गंगाजी की स्तुतिपरक रचनाएँ हैं । बहुत सारे पदों का विषय शृंगार ही है और ये विद्यापति की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ हैं । शेष पदों में युद्ध वर्णन, पांडित्य - प्रदर्शन और कूटपद (प्रहेलिका) हैं ।

1.3. वसंत खंड

1.3.1 वसंत ऋतु का स्वच्छन्द -वर्णन :

विद्यापति ने वसंत-वर्णन में निराली वर्णन - चातुरी से काम लिया है । उन्होंने वसंत को बालक के रूप में वर्णन किया है । इस प्रकार प्रकृति में चेतनता का आरोप किया । उसका मानवीकरण किया । वसंत का युवक होना, राजगद्दी पर बैठना आदि की कल्पना में कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

वसंत नौ महीने पांच दिन गर्भ में रहा और माघ मास की शुक्ल पंचमी को उसका जन्म हुआ । इसलिए इस दिन को 'वसंत पंचमी' कहा जाता है । शुभ लक्षण युक्त बच्चे का जन्म हुआ -

सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख है,
दिनकर उदित समाई है ।
सोरह संपुन बतिस लखन सह,
जनम लेल रितुराई है ॥

फिर उसका जन्मोत्सव बड़े आनन्द के साथ मनाया जाता है । यह मंगलोन्सव है और सभी लोग इसको मनाने में बड़ी रुचि लेते हैं । युवतियाँ उल्लसित मन से नाच रही हैं, मंगल गान गाती हैं, मानवती रमणियाँ भी अपने को रोक नहीं पातीं । इस उत्सव में शामिल होती है ।

नाच ए जुबति जना हरखित मन
जनमल, बाल मधाई है ।
मधुर महारस मंगल जावए
मानिनि मान उड़ाई है ॥

शिशु का 'वसंत' नामकरण हुआ । भौरों ने उसे कमल पंखुड़ियों से मधु लाकर दिया । पद्मनाल को तोड़कर बालक की कमर में सूत की तरह बांधा गया । केसर ने नवजात शिशु को बाघनख पहनाया । नवकिसलयों से उसकी कोमल सेज बनाई गई । सिर के नीचे कदम्ब माल का तकिया रख दिया गया । भ्रमरियाँ लोरी गाने लगीं । इत्यादि -

मधु लए मधुकर -बालक दए हल,
कमल -पंखरी लाई ।
पओनारि तोरि सूत बांधल कटि,
केशर कएल बघनाई ॥

नव नव पल्लव सेज ओछाओल

सिर देल कदम्ब नाल ॥

इस वर्णन में मौलिकता, स्वभाविकता, स्वच्छन्द निरीक्षण प्रभावत्मकता दर्शनीय है ।

जब बालक वसंत बड़ा हो जाता है तब वह ऋतुराज बन गया । उसे 'ऋतुराज वसंत' की उपाधि मिल गई । अब वह सजधज कर निकलता है -

बाल बसंत तरुन हो धाओल

बढ़ए सकल संसारा ।

दखिन पवन धन अंग उजारए

किसलय कुसुम परागे ।

सुललित हार मजरि घन कज्जल,

ओखिहि अंजन लागे ॥

अब वह सभी राजोचित ठाट के साथ सिंहासन पर बैठता है । नई कोंपलों की पीठिका बनाई गई । सिर के ऊपर चंपा फूलों का छत्र लगाया गया है । उत्तम मंजरी का किरीट मस्तक पर शोभा पा रहा है । कोकिला दरबार की गायिका बन गई है । मयूरों का दल नर्तक बना है तो भ्रमरों का झुंड गायक है । द्विगण(पक्षी) आशीर्वाद करने लगे हैं । पुष्प-पराग से चंदोवा बना है । मलय पवन मित्र बनकर सबका मन बहलाने लगा है ।

वसंतराजा का युद्ध अभियान देखते ही बनता है ।

कुन्द -बल्ली तरु छएल निसान ।

पाटल तून अशोक -दल बान ॥

किंसुक लता लवंग एक संग ।

हेरि सिसर पितु आगे दल भंग ॥

सैन साजल मधु मखिका कूल

सिसिरक सबहु कियेल निरमूल ॥

उधारल सरसिज पाओल प्रान ।

निज नव दल करु आसन दान ॥

राजा बन कर वसंतराज अपनी सेना का संगठन करता है । कुन्द बल्ली को पताका बनाता है । पाटल पातका तरकश धारण करता है, अशोक पत्तों का बाण बनाता है । पलाश -पात से धनुष बनाता

है । लवंग लता धनु की प्रत्यांचा बनी है । मधुमक्खियों का सैन्यदल इकट्ठा हुआ है । इस सेना ने शिशिर ऋतु पर आक्रमण करके उसे समूल नष्ट कर दिया है । शिशिर की चपेट से कमल बच जाता है । इसलिए वह अपने नवपल्लवों का सुन्दर आसन राजा को भेंट करता है ।

इसके अतिरिक्त वसंत परिणय, प्रणयकेलि जैसे अत्यंत सरस विषयों पर कवि की नजर जाती है । वसंतागमन से प्रकृति संघटित परिवर्तन का विशद और मनोरम वर्णन सजीव हो उठा है ।

वसंत आ गया है । वृन्दावन ने नया रूप धारण किया । नए -नए तरुगण नए पल्लवों से छा गए । नए-नए फूल विकसित हुए । नवीन वसंत आया । नूतन मलयातिल चलने लगा । नया अलिकुल मत्त हो उठा । नवकिशोर श्रीकृष्ण नव जागृत प्रेम से विभोर होकर यमुना तट के सुशोभित कुंजों में विहार करने लगे । नई आम्र मंजरी के मधु से मधुपगण मदमत्त हो उठे । कोकिल मस्त होकर गाने लगी। नवयुवा कृष्ण नवयुवती राधा से मिले । यह मिलन भी नवीन प्रकार से हुआ । ऋतु के अनुसार वे नए आलिंगन -पाश में आवद्ध हो गए । प्रकृति का यह उद्दीपन रूप विद्यापति ने वर्णन किया है ।

वसंत तो नारी मात्र के लिए उद्दीपन ही है । कवि कहता है - हे युवतियो, लज्जा छोड़ खूब नाचो और गाओ । श्रेष्ठ व्यापारी वसंत आया है । उससे सभी अच्छी वस्तुएँ मिल जायेंगी । हस्तिनी, चित्रिणी, पद्मिनी, गौरी, सांवरी, बूढ़ी, बाला सभी ने शृंगार किया है । रेशमी वस्त्र, आभूषण, चंदन, अरगजा , कर्पूर आदि लगाई है । पान का सेवन होता है । कुंकुम, केशर से अंगों में प्रलेप है । मांगों को मातियों से भर दिया गया है ।

कवि प्रकृति का आलंबन के रूप में भी वर्णन करता है । पर वहाँ भी आलंकारिकता दर्शनीय है । वसंत और प्रकृति का विवाह होगा । प्रकृति पूरी तरह सजीधजी है । उसने मांग में सिंदूर के रूप में टेसू फूलों से सजाया है । केतकी फूल पटवस्त्र है । उसकी धूल तो इत्र आदि सुवासित वस्तु है । ऋतुराज वसंत वर बना है । यह पुण्य का दिन है । चलो उसका चुंबन द्वारा स्वागत करें । बैठने को नव पल्लवों का आसन दिया गया है । श्वेत कमलों के मकरंद जल के रूप में दिया गया । लाल लाल अशोक फूल दीपक बनाए गए हैं । चंद्रमा दही बन गया है । भ्रमर घूम घूम कर निमंत्रण कर आए । कवियों के श्रेष्ठ विद्यापति इस रस को जानते हैं । या फिर शिवसिंह राजा ।

कहीं वसंत को वीर वेश में सजाया गया है । शीत के साथ उसकी लड़ाई है । वसंत पवन कोलाहल करता हुआ दस दिशाओं में बह रहा है । वह मानो वादी की भाषा बोल रही है और अपने अधिकारों की घोषणा कर रही है । कामदेव मानिनियों का मान उतार रहा है । शीत-वसंत के विवाद में कौन जीतेगा ? सूर्य दोनों तरफ से मध्यस्थ बन गया । कोकिला पक्षी ने साक्षी का काम किया । नवपल्लव पर जय-पत्र लिखा गया । भौंरों की पंक्ति अक्षर की पंक्ति बन गई । वादी वसंत से प्रतिवादी शीत डर गया । शिशिर विन्दु मिट गए । कुन्द कुसुम विकसित हुए । वे वसंत की विजयगाथा की

घोषणा कर रहे हैं । कवि कहता है कि इस आनन्द का अनुभव राजा शिवसिंह करते हैं ।

चारों ओर नए -नए पल्लव खिल उठे हैं । समग्र वन में लालिमा छा गई है । मानो प्रकृति ने लाल वस्त्र पहन लिया है । यह देखकर माधव का मन उल्लसित हो रहा है । वसंत को देख वृन्दावन की प्रकृति भी हर्षोल्लास से मस्त हो उठी है । मलय की हवा नाना प्रकार से अठखेलियाँ कर रही है । कोयल आम्रकुंज से बोल रही है । वह घोषणा कर रही है कि कामदेव ने संसार पर नया अधिकार पा लिया है । मधुपान करके मधुप दूत बन बैठा है । वह सब ओर घूमता फिरता है । व्यवस्था की जाँच करता है । वह कामदेव को मानिनियों की सूचना देता है । कामदेव उनका मान भंग कर देता है । श्रीकृष्ण वृन्दावन में सर्वत्र घूम-घूम कर रास -विलास कर रहे हैं । राधा और माधव नए भाव से भरे हैं । (181) वसंत के आगमन पर सभी उल्लास में भर जाते हैं । चाहते हैं कि चलो, वसंत ऋतु का रूप दर्शन करें । कुन्द और केतकी की शोभा को देखें । इस वक्त चन्द्रमा अधिक निर्मल और भौंरे अधिक काले लगते हैं । रात तो उजाले में झलमलाती है, और दिन में अंधकार रहता है । चन्द्रमा के उगने से रात में उजियाली और नव पल्लवों से लदे लताकुंजों में अंधियारी होती है । जहाँ मानिनियाँ मान किए बैठी हैं । पथिक प्राकृतिक सुषमा देख कामपीड़ित होते हैं । कवि श्रेष्ठ विद्यापति राधाकृष्ण के विहार का वर्णन करते हैं (182) वसंत का दूसरा नाम मधु भी है । अत: उसका वातावरण माधुर्य से भर उठता है । ऋतु मधु है, अत्यंत सुखदायक है । मधुकरों की पंक्ति गूंज रही है । फूल का संभार मधु से भरा है । वृन्दावन अत्यंत सुन्दर हो उठता है । वह अनेक प्रकार के रस-रंगों से सज गया है । सुन्दर नवयुतियों की संगति मादकता भर देती है । आनन्ददायक हास-विलास चलते हैं । मृदंग का ताल रसाल होता है । उसके साथ मीठी तालियों की आवाज है । अत्यंत सुन्दर नृत्य हो रहा है । नटी-नट का संग मजेदार है । मधुर गान हो रहा है । कवि का वर्णन भी बड़ा ही मीठा है । (183) प्रकृति का आलंबन रूप में सौन्दर्य वर्णन है ।

रास रंग का मादक और ध्वान्यात्मक वर्णन -' बाजति द्रिमि द्रिमि धौद्रिम द्रिमिया' वाले पदों में मिलता है । ताल, नृत्य, गान, ध्वनि सबका सुन्दर समाहार दर्शनीय है । (184) । फिर राधाकृष्ण और गोपियों के रास का रसाल वर्णन है । वसंत की राका - रजनी मोहक होती है । रसज्ञा रमणियाँ रसराज श्रीकृष्ण के साथ रास लीला में निमग्न हैं । रमणीरत्न राधा रसिक राज कृष्ण के नृत्यगान से अभिभूत है । अनेक राग-रागिनियाँ बज रही हैं । कंकन किंकिनियों की ध्वनि आकर्षक है । रसवंत कृष्ण नए-नए राग छेड़ते हैं । नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं । रास -विलास में राधाकृष्ण प्रमत्त हो उठे हैं । (185)

वसंत का रूप तो उन्मादक होता है । संयोग के समय टेसू अत्यंत आनन्ददायक होता है । विरह के समय तो टेसू फूलों में अनुराग नहीं आग उत्पन्न होती है । अत: मान तजकर प्रिय के साथ विलास करना चाहिए । (186)

1.4 वियोग खंड

1.4.1 वर्ण्य विषय

पदावली का मुख्य वर्ण्य- विषय है राधाकृष्ण की प्रेमलीला । कवि ने राधा और कृष्ण को नायक और नायिका के रूप में चुना है । शृंगार के दो पक्ष हैं - एक संयोग शृंगार, दूसरा विप्रलंभ या वियोग शृंगार । विद्यापति ने दोनों पक्षों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । यह स्मरण रखना है कि विद्यापति के पहले संस्कृत के कवि जयदेव ने अपने प्रसिद्ध गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' में राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन किया था । अन्य शृंगारिक रचनाएँ, जैसे अमरुकशतक, शृंगारतिलक, गाथा सत्तसई आदि में शृंगार का विस्तृत वर्णन हुआ है । विद्यापति ने इन रचनाओं से लाभ उठाया है । खासकर उन्होंने जयदेव का अधिक अनुसरण किया है, इसलिए उनको 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है । उनके गीत बहुत मीठे हैं, अतएव उनको 'मैथिल कोकिल' की उपाधि भी मिली थी ।

संयोग शृंगार के वर्णन में नायिका और नायक के रूप, गुण, ैावभाव, अंगचेष्टाओं, कामकेलि आदि का स्थूल वर्णन होता है । परंतु विरह वर्णन में मानसिक भावनाओं का । अतएव विरहवर्णन अधिक सूक्ष्म और ममस्पर्शी होता है । विरह अनेक कारणों से हो सकता है । मुख्य रूप से तीन कारण हैं - 1. पूर्वानुराग, 2. मान, और 3. प्रवास । विद्यापति ने इन सभी का वर्णन किया है । शारीरिक क्लेश, मानसिक पीड़ा, संताप, कामदशाओं के साथ उद्दीपन विभाव के रूपमें प्रकृति का चित्रण हुआ है । परवर्ती काल के वैष्णव -काव्यों में राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का विस्तृत, मार्मिक और हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है, विद्यापति की पदावलियाँ उनकी भूमिका प्रस्तुत करती हैं । विद्यापति की प्रेरणा मानवीय अनुभूति ही है । अतएव विद्यापति के पद अत्यंत रोचक और आकर्षक हैं । कवि सरल, सहज तथा आलंकारिक या काव्यात्मक दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग कुशलता से करता है ।

स्त्री -पुरुष का संपर्क जन्म-जन्मान्तर का माना जाता है । अतएव संस्कार के रूप में प्रेम जागृत हो जाता है ।

प्रिय-प्रवास ही विरह का मुख्य कारण होता है । अनेक कारणों से नायक को विदेश जाना ही पड़ता है । प्रिय विदेश जायेंगे, इतने मात्र से नायिका प्रवत्स्यत्पतिका दु:ख से कांप उठती है । उसमें एकदम से अमर्ष, आवेग और अधैर्य उमड़ पड़ता है । वह सखी से अनुरोध करती है कि प्रिय को विदेश जाने से रोके, क्योंकि वह कुलकामिनी होने के नाते स्वयं सीधे उन्हें मना नहीं कर सकती । सखी सज्जन

हैं । दुर्जन हँसी उड़ाते हैं । यह समय विदेश जाने का नहीं है । वे कुछ दिन और रहें । मुझे निंदा से बचायें । फिर तो भाग्य भोगूँगी । वे चले गए तो मैं मर जाऊँगी और उन्हें पाप लगेगा । (1)

अवसर पाकर नायिका स्वयं नायक से बाहर न जाने का अनुरोध करती है । क्योंकि तुम्हारे साथ मेरी हँसी-खुशी, राग-रंग, केलि-विलास सब छूट जायेंगे । तुम विदेश जाकर मुझे भूल जाओगे । मेरे लिए जो बहुमूल्य उपहार लाओगे, वे किस कामके ? मैं वह सब नहीं माँगती । मैं तो चाहती हूँ कि तुम वापस मेरे पास आ जाओ । वियोगिनी सखी से कहती है कि जब प्रियतम गए, मेरी आँखों में आँसू भर गए । इसलिए मैं उनको जी भर के देख भी नहीं पायी । हाय, विरह की यह व्यथा मुझसे सही नहीं जा सकती । सखी समझाती है कि धैर्य रखो । वे आयेंगे । तुम्हारी आशा पूरी होगी । विहरिणी आशा से जीवित रहती है । (2)

राधे सखी से कहती है - हे सखी, कल शाम को प्रिय ने कहा कि मैं मथुरा जाऊँगा । मैं उस देश के बारे में कुछ जानती न थी । रात को हम साथ थे, वह प्रिय उठकर चला गया । सूनी सेज मुझे काटने दौड़ती है । मैं उसका विच्छेद सह नहीं सकती । तू चिता जला दे, मैं प्राण दे दूंगी । सखी ने आश्वासन दिया कि प्रियतम फिर आएगा और तेरा मिलन होगा ।

1.4.2 वियोग की विभिन्न दशाओं का वर्णन :

* चन्द्रमा चला गया, तारे श्रीहीन हो गए :

राधा सखी से कहती है कि प्रिय मथुरा चले गए । मेरा पारसमणि दूसरे के हाथ चला गया । कुब्जा रानी बन गई । कृष्ण ने सभी गोपियों को भी छोड़ दिया । ब्रज का चन्द्रमा चला गया, तारे (गोनियाँ) श्रीहीन हो गये । मैं विरह की पीड़ा को नहीं सह सकती ।

* विरह में काम पीड़ा देता है :

विरह में नायिका दैव को कोसती है । क्योंकि जल बिना कमल या कमल के बिना जल का कोई मूल्य नहीं होता । उसी तरह शरीर और प्राण का संपर्क है । देह और यौवन का है । प्रिय विच्छेद से शरीर और प्राण व्याकुल हैं तो यौवन जलाता है । दैव शत्रु है, प्रिय से विच्छेद कराया है । कामदेव पीड़ा पहुँचाता है । चारों ओर की प्रकृति कामोत्तेजक है । भ्रमर पुष्पों पर गूंज रहे हैं । वे रस पीकर मंजरी को रसरहित कर देते हैं, तो ऐसे में वियोगिनी बाला कैसे जी सकती है । (191) यहाँ विरहिणी की मनोदशा का सजीव वर्णन है । संयोग की वस्तुएँ वियोग में दुखदायिनी हो जाती हैं ।

* संयोग में सुख देनेवाली वस्तुएँ वियोग में दु:ख देती हैं :

माधव ने जो समय की अवधि बताई थी वह निकट आ गई, पर वे नहीं दिखाई देते । कस्तूरी, चंदन, परिमल, कुंकम और चन्द्र चैसी वस्तुएँ शीतलता नहीं, अग्नि के समान ज्वाला प्रदान करते हैं । ऐसे में विरहिणी का शरीर जलता है, मन अस्थिर और व्याकुल है । प्रतीक्षा में नायिका की दशा दयनीय हो गई है । प्रतीक्षा अनंत : उसके नेत्र चारों ओर दौड़ते हैं, पर प्रिय के दर्शन नहीं मिलते ।

* आशा में प्राण अटके हैं :

मिलने की आशा में प्राण अटके हैं । वह मर भी नहीं सकती । रोते - रोते आँखें सूज गई हैं । मन करता है कि उड़कर उनके पास चली जाय ।(193)

राधा सखी से कहती है कि मेरे प्रिय का हृदय वज्र से भी कठोर है । वह अभी तक नहीं आया । जब मैं किशोरी (बाला) थी वह प्रवास में गया । अब मैं युवती हूँ, सब समझती हूँ । कोई संदेश ले जानेवाला भी नहीं है । प्रिय के सारे गुण विरह में विस्मृत हो गए हैं । (194)

* प्रियकी निष्ठुरता :

नायिा सखी से कहती है कि हे सजनी, मैंने प्रेमलता को आँसुओं से सींच -सींच कर बढ़ाया । उस लता का फल (कुच) परिपुष्ट हुआ । आँचल से वह छिपता नहीं । आशा करने लगी कि माधव मेरे मनोरथ को पूर्ण करेंगे । पर वे तो बड़े निष्ठुर निकले । सबसे अजीब बात यह है कि सभी के प्रियतम विदेश से लौट आए, अपनी प्रेमिकाओं के प्रेम का स्मरण किया । लेकिन मेरे प्रिय ने सब भुला दिया और अभी तक वापस नहीं आया । (195)

* कुशलकामना :

नायिका सोचती है कि यह विरह की दशा उसके दुर्भाग्य के कारण है, इसमें कान्हा का क्या दोष ? वे दूर चले गए । कोई संदेश ले जाने वाला भी नहीं है । मेरे लिए विधाता विपरीत है । पर वे चिरकाल सुखी रहें । मेरे प्रेम को वे भूल गए हैं । विरह वेदना मुझे बाण की तरह चुभ रही है । पर क्या करें - एक की वेदना दूसरा तो नहीं जानता न ! (196)

बारह महीनों में विरहिणी हर प्रकार से कष्ट में तड़प रही है । (208)

सखी माधव के पास जाकर वियोगिनी राधा की दुरवस्था का वर्णन करती है - हे माधव, मैंने तुम्हारी विरहिणी को आज बड़ी दयनीय दशा में देखा । जो मुख शारदीय चंद्रमा के समान था, वह

अरुण कमल के समान कुम्हाला गया है । हार भार बन गया है । अधर में हास नहीं, सखियों के साथ बोलती भी नहीं । सर्वदा तुम्हारा नाम रटती रहती है । सदा तुम्हारी बाट जोहती है ।

* उपालंभ - अटल प्रेम :

नायिका सखी से संदेश भेजती है कि यौवन -रतन तो चार दिन के लिए रहता है । जब तक वह था मुरारी ने मेरा साथ दिया रसहीन पुष्प, जलहीन सरोवर को कौन पूछता है ? लेकिन सखी उनसे कहना कि यह सज्जन की प्रीति नहीं है । मैं तो अपना शील और मर्यादा बनाए रखती हूँ । दैव के विधान को सहूँगी । (197-8) मैं तो बराबर प्रेम करती रहूँगी ।

* बारहमासा :

राधा सखी से कहती है कि देख , भाद्रव का महीना आ गया चारों ओर घना अंधकार छा गया । बादल गरजते, बराबर बरसते हैं । बिजली की सैकड़ों चमक वज्र की भाँति मेरी छाती को चीर डालती है । मोर उन्मत्त होकर नाचता है । मेंढक और डाहुक जोर-जोर से पुकारते हैं । प्रकृति उद्दीपन बनकर हर महीने नए रूप में मुझे सता रही है । काम के बाणें से मैं जर्जर हो गई हूँ । (199-200)

चातुर्मास्य कितने कष्ट से बीतते हैं । वसंत का समय अधिक भयंकर है । वन के नए कुंज कुटीरों में नए-नए फूल खिल उठे हैं । कोकिल पंचम स्वर में गा रहा है । मलयानिल बह रहा है । प्रिय के वियोग में चंद्रमा तो सूर्य बन गया है । चंदन आग बन गया है । भौंरे गूँज रहे हैं ।

ऐसे में कृष्ण के साथ संयोग का स्मरण सहज ही होता है । पर अब विधि वाम है । प्रिय प्रवास में हैं । नारी का जीवन कितना कठोर है कि वह इन विषम परिस्थितियों में भी जी रही है । शरीर क्षीण हो चुका है । कब प्राण पखेरू उड़ जाय, कौन जानता है । परंतु मृत्यु पर्यंत यह सहना ही होगा । सुखद काल दुखदायक है । ऐसे जीवन को धिक्कार है । निष्ठुर प्रिय से क्या कहा जाय । (201)

राधा कहती है - हे सखी, कान्ह को समझाकर कहना । प्रेम का बीज रोपकर उसका अंकुर उग आए तो उसे बचाना चाहिए न ! तुमने उसे मरोड़ डाला । हे सखि, मेरा अनुराग तो पानी में प्रसारित तेल की बूंद की तरह है और मेरा सुहाग तो सिकता के जल की तरह क्षण भर में सूख जाने वाला जैसा है । मैं तो कुललना थी, पर उनकी मीठी बातों में आकर कुलटा बन गई । अपने हाथों से ही मैंने अपनी बदनामी करायी । चोर की पत्नी की तरह मैं अपनी वेदना किससे कहूँ । वस्त्र में मुँह छिपा कर रोती हूँ । जैसे जलते दीपक को देख शलभ दौड़कर उसीमें भस्म हो जाता है, वैसी ही मैं कृष्ण -प्रेम में पड़कर उसका फल भुगत रही हूँ । विद्यापति कहते हैं यह तो कलियुग की रीति है । तुम्हारा प्रिय निष्ठुर

है तो तुम्हें अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा ।

बारह महीनों में विरहिणी हर प्रकार से कष्ट में तड़प रही है । (208)

सखी माधव के पास जाकर वियोगिनी राधा की दुरवस्था का वर्णन करती है - हे माधव, मैंने तुम्हारी विरहिणी को आज बड़ी दयनीय दशा में देखा । जो मुख शारदीय चंद्रमा के समान था, वह अरुण कमल के समान कुम्हाला गया है । हार भार बन गया है । अधर में हास नहीं, सखियों के साथ बोलती भी नहीं । सर्वदा तुम्हारा नाम रटती रहती है । सदा तुम्हारी बाट जोहती है ।

* विवशता :

नायिका का पत्र लेकर प्रियतम के पास जाने वाला भी कोई नहीं है । सावन मास हो गया । हृदय में असहनीय पीड़ा हो रही है । अकेली उसे भवन में रहना अच्छा नहीं लगता । उसके दारुण दु:ख को कोई नहीं विश्वास करता । हरि मन लेकर चले गए । वह उनके नाम की सार्थकता है । गोकुल गए, अपयश कमाया । सखी ढाढ़स बंधाती है कि हे नारि ! धैर्य रख । प्रिय आएगा । पर नायिका को विश्वास नहीं होता कि माधव आयेंगे । विरह समुद्र से वह पार नहीं पा सकती । क्षण-क्षण करके दिन, दिन-दिन करके मास, मास पर मास बीत गए, वर्ष बीत गया । नायिका ने प्रिय के आगमन की आशा के साथ जीने की आशा भी छोड़ दी है का बरखा जब कृषि सुखाने ? नवयौवन बीत जाने पर प्रिय आयेंगे भी तो क्या लाभ होगा ?

* उद्वेग :

विरह की दशा में सभी मित्र लोग शत्रु बन गए हैं । चंद्रमा से आग बरसती है, पपीहा बोलता है तो मन और दु:खी हो जाता है । महीने पर महीना बीतता जाता है । संयोग में जो सुख दे रहा था, वही अब दु:खदायी हो गया है । चंदन विषम हुआ, भूषण भार बन गया । इकलौती कदंब पेड़ के नीचे खड़ी होकर बाट जोहती रही । देह दग्ध हो गई । साड़ी मलिन हुई । ऐसे में उद्धव का उपदेश तो उसे मार ही डालेगा । (206-8)

* उन्माद :

वह तो पगला गई है । लोग होली खेलने आए, पर कोई उसकी मनोदशा को जानता ही नहीं । तुम्हारे वियोग में उसने सारे प्रसाधन त्याग दिये हैं । जलहीन मछली की तरह वह सर्वदा तड़पती रहती है । (209)

उसकी आँखों से सदा बहने वाले आँसुओं ने नदी का निर्माण कर दिया है । उसीमें वह स्नान करती रहती है । कमलनाल जैसे हाथों की माला बनाकर तुम्हारा नाम जपती रहती है । राधा वृन्दावन में तपस्या कर रही है । उसकी हृदय -वेदी पर कामाग्नि जल रही है । अपने प्राणों की समिधाएँ डालकर होम कर रही है । तुम उसकी हत्या के भागीदार होंगे । (210)

* मरण-मूर्च्छा और जड़ता :

एक दिन वह अकस्मात घर से निकली तो भ्रमरों के गुंजार से मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । न तो वस्त्र को संभाल पायी और न केशराशि को । सखियों की सेवा से वह किसी तरह जी रही है । (211)

* विरहिणी की दशा का वर्णन :

हे माधव तुम बड़े कठोर हृदय वाले हो । सखी राधा की विरह-दशा की दयनीय अवस्था का वर्णन करती है । अब तो घर चलो । मैंने देखा है - वह चंद्रमा को देख नहीं पाती । करुण दृष्टि से पथ निहारती है । काजल से धरती पर राहु का चित्र बनाकर चंद्रमा से बचने का प्रयास करती है । मलयानिल उसे जलाता है । अपने दस नखों से सर्प का अंकन करती है, जो उसे खा जाय । 'शिव -शिव' जपती हैकि यह कामदेव के अत्याचार से बचायें । प्रफुल्लित उपवन देख आँखें बंद कर लेती है । भ्रमर पिक आदि की पुकार सुन कानों को बंद कर लेती है । अत्यंत दुबली हो गई है । सर्वदा तुम्हारे गुणों का अनुस्मरण करती है । आँखों से जल धारा अविरल बहती है । उठ बैठ नहीं पाती । उसने अपने मुख - लावण्य चंद्रमा को, नेत्रों की चंचलता हिरनी को और केशविन्यास चमरी गाय को सौंप दिए हैं । दातों की शोभा अनार को, देहकान्ति बिजली को, अधर की लालिमा बन्दूक पुष्प को सौंपकर उसने तुम्हारे वर्ण को स्वीकार कर लिया है ।

फिर वसंत ऋतु का सुन्दर वर्णन करके सखी नायक को घर लौट कर ऋतुपति में विहार करने का उपदेश देती है । केवल विरहिणी राधा ही नहीं, कृष्ण भी इस आनन्द से वंचित हो कामदेव के बाणों को सहन कर रहे हैं । (214-15)

* उन्माद, जड़ता, प्रलाप, व्याधि, मरण आदि कामदशाएँ :

सखी कहती है कि हे माधव राधा को कैसे सांत्वना दें ? हा हरि, हा हरि पुकारती हुई, हताश होकर वह अपने प्राणों को अंत करने वाली है । बैठी तो उठ नहीं पा रही है । वैसे तो विरहिणी दु:खी होती है, तिस पर कामदेव के पुष्पबाण उसके शरीर को छलनी किए दे रहे हैं । आँसुओं से उसका शरीर

नीला है, आँखें लाल हो गई हैं बाल बिखरे हैं । सखियों को संदेश है कि वह जीवित नहीं रह सकती । वह नि:शब्द पड़ी रहती है तो सखियाँ उसकी श्वास क्रिया की परीक्षा करती हैं । पंखा झलती है । उसका हृदय तो टूट चुका है और लंबी सांस चलने लगी हैं । वह अनक्षण माधव -माधव रट लगाये रहती है । अब वह माधव बन गई है । हे माधव, तुम्हारा प्रेम अपूर्ण है । इतनी क्षीण हो गई है कि जीवित रहना असंभव -सा लगता है । वह अब तो राधा -राधा पुकारती रहती है । प्रलाप, जड़ता और मरण जैसी अवस्थाओं में पड़ी रहती है । वह राधा बनी रहे या कृष्ण बन जाए, दोनों अवस्थाओं में दारुण वियोग का अनुभव करती है । जैसे लकड़ी के जलने से उसके अंदर का कीड़ा संतप्त होता है और आखिरकार जल मरता है, वैसे ही राधा अवश्य इस विरहाग्नि में जल्दी ही जलकर राख हो जाएगी । ऐसा अन्न्य प्रेम किसी दूसरे में नहीं देखा जाता । (217-19)

इस प्रकार पारंपरिक काम दशाओं (अभिलाषा, चिंतन , स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता व्याधि, मरण के चित्र खींचने में कवि अत्यंत कुशल है । बारह मासों में विरह की दशाओं का वर्णन भी मार्मिक है । प्रेम की अनन्यता, विवशता, वेदना आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन सर्वत्र मिलता है । प्रकृति यहाँ उद्दीपन विभाव के रूप में काम कर रही है । इस विरह -व्यथा को मर्मी ही जान सकता है । सखियाँ कवि, उसके आश्रयदाता ही इस विप्रलंभ -शृंगार के आस्वाद ले पाते हैं । रसिक जन इसे समझते हैं ।

राधा-कृष्ण मानवीय धरातल पर नायक-नायिका के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं । यह प्राकृत प्रेम है । कहीं -कहीं अप्राकृत प्रेम की झलक मात्र मिल सकती है ।

विद्यापति की पदावली आगे के भक्त और रीतिकाल के कवियों के लिए प्रेरणा बनी है ।

विद्यापति के वंसत और आगे हम विरह -वर्णन संबंधी कुछ पदों का अध्ययन करेंगे ।

1.5. कवित्व :

कवि ने तीन प्रकार की रचनाएँ की हैं -

1. आश्रयदाताओं के लिए चरित काव्य ; जैसे कीर्तिलता, कीर्तिपताका आदि । अपभ्रंश में हैं ।
2. पांडित्यपूर्ण काव्य : अधिकांश संस्कृत रचनाएँ इसके अंतर्गत आती हैं ।
3. जनकाव्य - सामान्य लोगों के लिए उन्हीं की अनुभूतियों पर लिखी गई कविताएँ ; जैसे - पदवाली । इनमें कवि का भावुक हृदय झलकता है ।

पदावली का मुख्य विषय शृंगार है । एकाध पद शांत रस के हैं और कुछ वीर रसके हैं । सभी रसों का परिपाक शास्त्रीय दृष्टि से सुचारु रूप से हुआ है । अर्थात् इनमें भावों, अनुभवों विभावों और संचारी भावों का सम्यक संयोजन है । इसलिए रस की निष्पत्ति आसानी से हो जाती है ।

कवि ने शृंगार वर्णन करते समय नारी -पुरुष के अंतर्जगत के सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्र दिए हैं । अनुभूतियों को मर्मस्पर्शी बानने के लिए उपमादि अलंकारों का प्रयोग किया गया । अक्सर ये कवि की मौलिक कल्पना के परिणाम हैं । कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की प्रशंसा करनी पड़ती है । प्राकृतिक उपमान बड़े ही सुन्दर हैं ।

काव्य मुक्तक होने के कारण इसमें व्यक्तिगत अंतरंगता, भावात्मकता, गेयता, स्वच्छन्दता अधिक है, जो इनको अधिक रमणीय और रसार्द्र बनाता है ।

काव्यात्मकता के अनेक दृश्य यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं । विद्यापति सौन्दर्य के कवि हैं । मानवीय सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को जोड़कर देखने की कवि की अनुपम दृष्टि है । आगे कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया गया है ।

1.6._विद्यापति की काव्यगत विशेषताएँ :

पदों का वर्गीकरण :

विद्यापति के पदों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

1. शृंगारिक (संयोग और विप्रलंभ)
2. भक्तिरसात्मक (स्तुतियाँ/ अलौकिकभाव)
3. विविध (कूटपद, शिवसिंह का सिंहासनारोहण)

1.6.1 प्रगीत काव्य :

मुक्तक काव्य और गीतिकाव्य की परंपरा बहुत ही प्राचीन है । संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में यह मिलती है । इसमें अनेक प्रख्यात रचनाएँ हैं । सबसे प्रसिद्ध रचना जय देव का 'गीतगोविन्द' है । इसमें विभिन्न राग रागिनियों में बद्ध संस्कृत की कोमलकांत पदावली में राधाकृष्ण की लीलाओं के अंतर्गत शृंगारपरक पद लिखे गए हैं । यद्यपि जयदेव का आग्रह है कि 'हरिस्मरण' करना हो तो 'गीतगोविन्द' गाओ अथवा काव्य -संगीत आदि कलाओं के विलास में रुचि हो तो इसे गाओ, फिर भी अधिकतर उनकी यह छोटी-सी रचना सहृदय काव्य-रसिकों की आदर -वस्तु रही । विद्यापति उसकी

आगे की कड़ी है । उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, आदि समर्थ सभी भाषाओं को छोड़ देशी भाषा मैथिली में पद रचना करने का साहसिक कार्य किया । देशी भाषाओं के उदय-काल में विद्यापति जैसे कुशल कवि ने उसकी सामर्थ्य, माधुर्य, सौहार्द को निखार कर रसिकों के सामने धर दिया । इसीसे आगे के कवियों (जैसे सूरदास, तुलसीदास) को भाषा में रचना करने की प्रेरणा और साहस मिला । विद्यापति ने साफ शब्दों में देशी भाषाओं के माधुर्य की प्रशंसा की -

देसिल बयन सब जन मिट्ठा ।

तैं तैंसन जंपेउ अबहट्ठा ॥

दोष देखने वाले विपक्षियों को तो उन्होंने खुला आह्वान किया । वे कहते हैं कि बालचंद्र और मेरी भाषा को कोई दोष नहीं दे सकता । क्योंकि वह शिवजी के मस्कक पर चमकता है और मेरी भाषा नागर रसिक काव्यकला के पारखियों का मन हरण करेगी ।

बालचन्द विज्जावइ भासा ।

दुहु नहिं लागइ दुज्जन हासा ॥

ओ परमेसर हर सिर सोहई ।

ई णिच्चय नाअर मन मोहई ॥

1.6.2 प्रकृति वर्णन :

मानवीय चेतना अपनी चारो ओर की प्रकृति के प्रति आरंभ से ही संवेदनशील रही । प्रकृति का सौन्दर्य और भयानक रूप दोनों मनुष्य के मन में अनुरूप प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं । प्राकृतिक शोभा को देखकर वह खुश होता है । प्रकृति में पावस, हेमंत का रूप देखकर वह भीत, चकित भी होता है । प्रकृति की सुन्दरता का स्वच्छन्द वर्णन करने में कवि का हृदय उल्लसित होता है । प्रकृति का यह रूप आलंबन होता है । प्रकृति को देख कर सुख या दु:ख का अनुभव करना उसका उद्दीपन रूप है । विद्यापति का प्रकृति वर्णन अधिकतर उद्दीपन रूप में हुआ है । परंतु कवि प्रतिभा प्रकृति के रूप को देख मुग्ध होकर भी वर्णन करती है । इसलिए कुछ विद्वानों का मानना है कि विद्यापति की पदावली में प्रकृति तीन रूपों में दिखाई पड़ती हैं -

1, शुद्ध या नैसर्गिक रूप में

2. आलंबन रूप में

3. उद्दीपन रूप में ।

इनमें से तीसरे रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत हुआ है । संयोग श्रृंगार वर्णन में प्रकृति का 'षड़-तु' रूप में वर्णन हुआ है तो वियोग श्रृंगार के संदर्भ में 'बारहमासा' शैली में । विद्यापति का प्रकृति - प्रेम साफ दिखाई देता है । क्योंकि साहित्यिक परंपराओं के पालन में भी नया कौशल दिखाया ।

उदाहरण के लिए उद्दीपन विभाव के रूप में पावस ऋतु का वर्णन देखें -

सखि हे हम र दुखक नहिं ओर ।
इ भर बादर माह भादर,
सून मंदिर मोर ॥
झंपि घन गरजंति संतत
भुवन भरि बरसंतिया ।
केत पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हंतिया ॥
कुलिस कत सत पात मुदित,
मयूर नाचत मातिया ।
दादुर डाक डाहक,
काटि जाए न छातिया ॥
तिमिर दिग भरि घोर जामिनि,
आथिर पिचुरिक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गमाओ,
हरि बिना दिन रातिया ॥

इसमें पावस का सांगोपांग रूप आया है । बादलों का घिरना, घुमड़ना, गरजना, मूसलाधार बरसना, बिजली चमकना, मेंढक बोलना, सघन अंधकार छा जाना आदि विरह की अवस्था को असहनीय बताते हैं ।

1.6.3 श्रृंगार रस

संयोग श्रृंगार में नायिका - नायक का रूप वर्णन अत्यंत सुन्दर बन पड़ा है ।

विद्यापति वय:संधि के वर्णन में अत्यंत पारंगत हैं । नायिका के शारीरिक और मानसिक

परिदर्शन का आनन्द इस पद में स्पष्ट है -

खने खने नयन कोन अनुसरई,
खने खने वसन धुलि तन भरई ।
खने खने दसन दसा छूट हास,
खने खने अधर सामे बहु वास ।
चओंक चलए खने खन चलु मन्द,
मन मथ पाठ पहिल अनुबन्ध ।
हिरदय मुकुल हेरि हेरि थोर,
खने आंचर दए खने होए भोर ।

* सघ:स्नाता का वर्णन इन शब्दों में देखिये :

कामिनि करए सनाने । हेरितहि हृदय हनए पंच बाने ।
चिकुर जरए जलधारा । जनि मुख - ससि डर रोअए अंधारा ॥ (इत्यादि)

1.6.4 प्रेम का स्वरूप :

सखि , कि पूछसि अनुभव मोय
से हो पिरित अनुराग बखानिए, तिल तिल नूतन होय ।
जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपति भेल
से हो मधु बोल स्रवनहि सूनल, स्रुतिपथ परस न भेल ।

* वय:संधि

क) वय:संधि है - शैशव और यौवन - दोनों मिल गए हैं ।

शैशव यौवन दुहुँ मिलि गेल
स्रवनक पथ दुहुँ लोचन लेल ।
वचनक चातुरी लहुलहु हास

धरनीय चाँद करए परगास ।

* वय:संधि की चेष्टाएँ

ख) नीचे के पदों में किशोरी के मन की चंचलता और क्रियाकलाप वर्णित है -

सैसव जोवन दरसन भेला ।
दुइ दल बलहि दद पुरि गेला ॥
कबहुँ बाँधुए कच, कवहुँ बिथार ।
कबहुँ झाँपए अंग, कवहुँ उघार ॥
थीर नयान अथिर किछु भेल ।
उरज उदय थल लालिम देल ॥
चपल चरन चित चंचल मान ।
जागल मनसिज मुदित नयान ॥

1.6.5 रूपमाधुरी :

जाहाँ जाहाँ पदयुग धरइ
ताहाँ ताहाँ सरोरुह भरइ ॥
जाहाँ जाहाँ झलकत अंग
ताहाँ ताहाँ बिजुरी तरंग
जहाँ जहाँ नयन विकास
तहँ तहँ कमल प्रकास ॥

जहाँ रूप का वस्तुनिष्ठ (जैसा दिखता है वैसा) वर्णन, आलंबन का वर्णन वहाँ शुद्ध सौन्दर्य चेतना है । किन्तु अनेक स्थानों में रूप वर्णन कामुकता और वासना से प्रभावित है । ऐसे में आलंबन भी उद्दीपन बन जाते हैं और आलंकारिकता स्वत: आ जाती है । जैसे नीचे के उद्धारण को देखिए । राधा के घने केश उरोजों पर फैले हैं । उनसे हार भी उलझ गया है । अतएव हार के मोती सुमेरु पर्वत पर चंद्रविहीन ताराओं की भाँति दिखाई देते हैं । यहाँ शारीरिक सौन्दर्य का कामोद्दीपक प्रभाव स्पष्ट है -

कुच जुग परसि चिकुर फुनि परसल,

ता अरु झाइल हारा ।

जनि सुमेरु ऊपर मिलि उगल,

चन्द्रविहीन सब तारा ॥

कवि की दृष्टि प्राय: नायिका के कुचों पर आ जाती है, वह वासनात्मक है । यहाँ नायिका का सौन्दर्य आलंबन न रह कर उद्दीपन विभाव बन जाता है -

ते भेल बेकत पयोधर सोभ,

कनक कमल हेरि काहि न लोभ ।

आध लुकाइल आध उदास,

कुच कुम्भे कहि गेल आपन आस ।

श्रीराधा के 'अपरूप' रूप - सौन्दर्य का चित्रात्मक वर्णन बड़ा ही मर्मस्पर्शी बन पड़ा है -

ऐ सखि पेखल एक अपरूप ।

सुनइल मानवि सपन सरूप ॥

कमल जुगल पर चाँद क माला ।

तापर उपजल तरुन तमाला ॥

तापरि बेढ़लि बिजुरी लता ।

कालिन्दी तट धीरे चलि जाता ॥

साखा सिखर सुधाकर पाँती ।

लाहि नवपल्लव अरुनक भाँती ॥

बिमल बिंबफल जुगल बिकास ।

तापर कीर धीर करु बास ॥

तापर चंचल खंजन जोर ।

तापर साँपिनि झाँपल मोर ॥

दो कमल जैसे चरण, चंद्रपक्ति -सी नखों की ज्योति, नययौवन से दीप्त श्यामशरीर, नवपल्लव की लालिमातुल्य हथेलियाँ, बिंबाफल जैसे अधरोष्ठ, स्थिर शुक-सी नासिका, चंचल खंजन जैसे नेत्र, घने काले केश, उस पर मोरपंख । कौन नायिका इस रूप से मुग्ध नहीं होती ? विद्यापति का बाह्य सौन्दर्य के कुशल चित्रकार हैं । पर वे सूक्ष्म मनोभावों और मनोदशाओं को देख सकने में असमर्थ रहे । विलास

का वर्णन उन्हें रुचिकर लगता था ।

इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने कहा -''विद्यापति की राधा में प्रेम की अपेक्षा विलास अधिक है । उसमें गंभीरता का अटल स्थैर्य नहीं है ।

1.6.6 **विरह वर्णन :**

विद्यापति के विरह वर्णन में अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता और मानसिक अवस्था के चित्र मिलते हैं । यहाँ भी अनेक पद काम-पीड़ा के बाह्य -वर्णन में लगाये गए हैं । विरह के बाद मिलन की संभावना से आनन्द और उल्लास काफी बढ़ जाता है -

कि कहव रे सखि आनन्द मोर ।
चिर दिन या माधव मंदिर मोर ॥
दारुन वसन्त जता दुख देल ।
हरि मुख हेरत सब सुख पेल ॥

लेकिन विरह की अवस्था में तन्मयता भी इस पद में मिलती है -

अनुखन माधव माधव रटइत
राधा भेलि मधाहि ।

और यह एक अद्‌भुत तल्लीनता पैदा करती है । राधा और कृेण एक-दूसरे में मग्न हैं और विरह -वेदना बढ़ जाती है -

राधा संय जब पुनतेहि माधव,
माधव संय जब राधा
दारुन प्रेम तबहि नहिं टूटत,
बाढ़त विरहक बाधा ।

एक और सुन्दर वर्णन निम्न पंक्तियाँ देखिए :

माधव अपसब तोहर सिनेह ।
अपने बिरहें अपन तनु जरजर जिबइते भेल संदेह ॥
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरु छल-छल लोचन पानि
अनुखन राधा -राधा रटइत, आधा आधा बानि ॥

अंत में यह कहा जा सकता है कि विद्यापति प्रेम, सौन्दर्य, संयोग और वियोग के वर्णन में बड़े कुशल कवि हैं । उनका जीवन दरबारी था । आश्रयदाता के मनोरंजन, विलास आदि के संवर्धन के लिए उन्होंने बहुत से पद लिखे । विलासी मानसिकता के कारण बाह्यजगत का स्थूल वर्णन स्वाभाविक था । पर हार्दिकता तो प्रेम का लक्षण है । वह भी बराबर झाँकता है ।

इसीलिए परवर्ती श्रृंगार काव्य पर विद्यापति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है । भक्तिकाल में सूक्ष्मता है तो रीतिकाल में स्थूलता अधिक दिखाई पड़ती है ।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. विद्यापति के जीवन चरित्र का वर्णन कीजिए ।
2. विद्यापति को कवि के संस्कार कहाँ से मिले ?
3. विद्यापति के पांडित्य और कवित्व की झाँकी प्रस्तुत कीजिए ।
4. पदावली का क्या महत्व है, समझाइए ।
   i) पदावली के मुख्य वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालिए ।
   ii) विद्यापति की भक्ति की विशेषताएँ बताइए ।
   iii) विद्यापति के श्रृंगार वर्णन की विशेषताओं की समीक्षा कीजिए ।
5. विद्यापति के प्रकृति -वर्णन का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए ।
6. विद्यापति की काव्यगत विशेषताओं का सोदाहरण परिचय दीजिए ।
7. विद्यापति श्रंगार -वर्णन के अप्रतिम कवि हैं, सिद्ध कीजिए ।
8. श्रृंगार रस का परिपाक विद्यापति की पदावली में कैसे हुआ है समझाइए ।
9. ''रूप वर्णन में विद्यापति का मन विशेष रूप से रमा है'' -
   इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
10. 'श्रृंगार' का महत्त्व विरह वर्णन है' - प्रमाणित कीजिए ।
11. बारहमासा क्या है ? विद्यापति की विलक्षणताओं का सम्यक् - परिचय दीजिए ।
12. विरह की विभिन्न कामदशाओं का समावेश पदावली में कैसे हुआ है, समझाइए ।

❋ संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

1. विद्यापति का काव्य विषय क्या है ?
2. संयोग शृंगार के अंतर्गत विद्यापति ने क्या -क्या वर्णन किया है ?
3. स्थूल रूप वर्णन के साथ सूक्ष्म मनोभावों का वर्णन विद्यापति ने कैसे किया है ?
4. प्रकृति के किन-किन रूपों का वर्णन पदावली में है ?
5. विरह -वर्णन की मुख्य विशेषताएँ क्या -क्या हैं ?

❋ अति संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

1. विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' क्यों कहा जाता है ?
2. वय:संधि के एक मनोहारी वर्णन की झाँकी दीजिए ।
3. प्रकृति और नारी -सौन्दर्य दोनों का समन्वय कैसे किया गया है ?
4. विरह में किन-किन कामदशाओं का वर्णन मिलता है ?
5. विद्यापति का प्रभाव परवर्ती काव्य में किस पर पड़ा है ?

संदर्भ ग्रंथसूची

- विद्यापति की पदावली, विद्यापति ठाकुर, आलोचना प्रकाशन- 2010.
- विद्यापति: सम्पूर्ण पदावली, विद्यापति ठाकुर, गीता प्रेस, गोरखपुर- 1998.
- विद्यापति: चुनी हुई काव्यरचनाएँ, विद्यापति ठाकुर, साहित्य भवन, आगरा- 2008.
- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2005.
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 2015.
- हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006.
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा- 2006.

UNIT - II

पृथ्वीराज रासो

चन्द बरदाई

इकाई-2 (पृथ्वीराज रासो -शशिवृता का विवाह)

विषय सूची

2.1 कवि परिचय

2.2 रासो काव्य की परंपरा

2.2.1. छंद वैविध्यपरक रासो धारा

2.2.2 गीतनृत्यपरक रासो धारा

2.3 ऐतिहासिकता

2.4 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

2.4.1 अप्रामाणिक मानने के कारण

2.4.2 प्रामाणिकता के पक्ष में

2.4.3. निष्कर्ष

2.5 पृथ्वीराज रासो का काव्यत्व

2.6 महाकाव्यत्व

2.6.1 सफल महाकाव्य

2.6.2 काव्य सौष्ठव

2.6.3. काव्योत्कर्ष का परिचय

2.7. शशिव्रता विवाह

2.7.1.कथानक

2.7.2.नारी का सौन्दर्य वर्णन

2.7.3.वीर और शृंगार रस का प्राधान्य

2.7.4.चरित्र-चित्रण

2.7.5.'पृथ्वीराज सासो' की भाषा

2.8. अभ्यास प्रश्न

पृथ्वीराज रासो

2.1 कवि परिचय :

* कवि चंद बरदाई

हिन्दी के प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के रचियता का नाम है चंद बरदाई । रासो में प्राप्त तथ्यों का आधार लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -

''रासो के अनुसार यह भट्ट जाति के जागत नामक गोत्र के थे । इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था । इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार छोड़ा था । वे महाराज पृथ्वीराज के महाकवि ही नहीं, उनके सखा और सामंत भी थे, तथा षट् भाषा , व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि अनेक विद्याओं के पारंगत थे । इन्हें जालंधरी देवी का इष्ट था, जिसकी कृपा से ये अष्ट-काव्य भी कह सकते थे । इनका जीवन पृथ्वीराज के साथ ऐसा मिलाजुला था कि अलग नहीं किया जा सकता है । युद्ध में, आखेट में, सभा में, यात्रा में सदा महाराज के साथ रहते थे और जहाँ जो बातें होती थीं, सबमें सम्मिलित होते थे (हिन्दी साहित्य का इतिहास)'' । शुक्लजी के इस मंतव्य के अधिकतर स्वीकार करते हुए भी आगे के विद्वानों ने शोध के आधार पर कुछ संशोधन किए हैं । उन सबके आधार पर चन्द बरदाई की जीवनी इस प्रकार थी -

उनके पिता का नाम मतह था, जो राजपुताना से लाहौर आकर बस गए थे । वे पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के दरबारी थे । चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था । विद्वानों ने बड़े विचार-विमर्श के बाद उनका जन्म 1149 ई. और मृत्यु 1192 स्वीकार किया है । कवि का मूल नाम पृथ्वीचन्द या पृथ्वीभट्ट था । किन्तु उन्होंने अपना नाम चन्द लिखा है । वरदाई उनकी उपाधि थी । जो उन्हें देवी सरस्वती से मिली थी -

बिजै है मति राज, इक तिजौ बहु धरयौ ।
मोहि चन्द वरदाई, सु, अन्तर मति शरयौ ।

(छन्द 606, समय 50)

⁂ चन्द बरदाई और पृथ्वीराज के मैत्रीपूर्ण संबंध :

दोनों में घनिष्ठता थी । चन्द दरबारी कवि सलाहाकार, सहायक, विश्वासपात्र मित्र आदि सब कुछ थे । उनके संबंध का कई स्थानों में भावपूर्ण स्मरण किया गया है -

हमहि राज इक वास, सत्थ उपन्ने संग सवि ।
नेह बंध बंधियै, करिक अति प्रीति राज रिवि ॥
सामंत संकल्प अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियो
बलि सद्र -नेह संसार सुष, किम सुनेह छंडे जियायो ॥

(छं. 1702, समय 66)

चन्द वरदाई के कई पुत्र थे । उनमें जल्हण नामक पुत्र विद्वान और गुणवान था । इसी जल्हण के हाथ रासो ग्रंथ को समर्पित करके चन्द गजनी गए थे -

दहित पुत्र कवि चन्द के सुन्दर रूप सुजान ।
इक जल्लह गुन वावरो, जुन समंद ससि मान ॥
आदि अन्त लगि वृत मन, वृन्नी गुनी गुनराज ।
पुस्तक जलहन हस्थ दै चलि गज्जन नृप काज ॥

म.मो. हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि चन्द सोमेश्वर के दरबार में जाते थे । वे राजा और राजकुमार पृथ्वीराज दोनों के प्रिय पात्र थे । उन्हें नागौर में काफी जमीन मिली थी , जो आजतक उनके वंशजों के दखल में है ।

चन्द और पृथ्वीराज की मृत्यु के संबंध में एक कहानी प्रचलित है । कहते हैं गोरी के आखिरी आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने चन्द को कांगड़ा दुर्ग के अधिपति सामंत हाहुली हमीर की सहायता मांगने के लिए भेजा । परंतु हमीर नाराज था । उसने चन्द की बात नहीं मानीं । उल्टे उनको जालंधरी देवी के मंदिर में बंदी बनाकर गोरी की सहायता करने को भाग गया । पृथ्वीराज गोरी के हाथों पराजित हुआ । उसे गजनी में अंध करागार में डाल दिया गया । चंद कारावास से किसी तरह मुक्त हो योगिनीपुर (दिल्ली) आए । वहाँ समाचार पाकर पुत्र जल्हण को सारी जिम्मेदारी देकर गजनी चले गए । वहाँ गोरी को उन्होंने समझा-बुझा कर पृथ्वीराज की धनुर्विद्या की करामात देखने को राजी कराया । कूट भाषा में पृथ्वीराज को समझाया । पृथ्वीराज की आँखों में पट्टी बांधी गई । उन्होंने बाण चलाया तो गोरी मारा गया । उनके सामंत जब तक पृथ्वीराज को पकड़ते उसने चंद को और चन्द ने राजा को छुरा भोंककर दोनों एक साथ संसार छोड़कर चले गए ।

2.2 रासो काव्य की परंपरा :

'रासो' शब्द का मूल रूप क्या था , इस पर विद्वानों ने अनेक अनुमान किए हैं । राजसूय, रसायण, रासक, रासऊ, रास, रहस्य आदि शब्दों से इसकी व्युत्पत्ति की है । ऐसा लगता है कि अनेक प्रकार के रासो ग्रंथों को देखकर रासो शब्द के मूलरूप को ढूँढने का प्रयास किया गया है । हमारे विचार से 'रासक' ही वह मूल शब्द है ।

आचार्य शुक्ल ने वीरगाथाओं के दो रूपों का उल्लेख किया है । पहला प्रबंध काव्य के रूप में और दूसरा गीतों के रूप में । डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने भी इसे दूसरे शब्दों में स्वीकार किया है - छंद वैविध्य परक परंपरा और गीतनृत्य परक परंपरा ।

इनमें शृंगार, करुण रस, लौकिक और धार्मिक सभी विचारों को विषय बनाकर रचनाएँ हुई हैं । अपभ्रंश के 'संदेश रासक' में शृंगार मुख्य प्रवृत्ति है तो जैनियों के 'रासो' नामक ग्रंथों में धार्मिक विचार और नीति । शुक्लजी रासो का मुख्य उपजीव्य , वीर रस ही मानते हैं । प्रबंध काव्य का नमूना 'पृथ्वीराज रासो' है तो गीतकाव्य के रूप में बीसलदेवरास । अतएव कहा जा सकता है कि रासो ग्रंथों में वीर और शृंगार को विशेष रूप से अपनाया है । यद्यपि इनमें सभी रसों और सभी विषयों पर रचनाएँ हुई हैं । शारदातनय 'लास्य' नृत्यु के भेद में एक नाट्य रासक और रासक या रासबन्ध काव्य , जिसका निर्देश अपभ्रंश छन्द : शास्त्रियों ने किया है इनसे रासो ग्रंथ की शुरुआत समझनी चाहिए । लक्ष्य करने की बात है कि संस्कृत और प्राकृत में 'रासो' नाम की कृतियाँ नहीं मिलतीं । अपभ्रंश में ही इसका आरंभ हुआ है । 'संदेश रासक' जैसी मधुर रचना अपभ्रंश में मिलती है । पुरानी गुजराती और राजस्थानी में भी रासो नामक रचनाएँ मिलतीं हैं । जैनाचार्यों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए अनेक रासो ग्रंथ लिखे हैं । काव्य रूप रासो ग्रंथ भी अनेक हैं ।

2.2.1 छन्द वैविध्यपरक रासो धारा :

1. मुंजरास' (1140) ई. के पूर्व) का नाम लिया जाता है, पर यह रचना अभी तक नहीं मिल पाई है । इसके छन्द हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण (1183 ई.) में उद्धृति हैं । मेरुतुंग के 'प्रबन्ध चिंतामणि' (1304ई.) में भी कुछ छंद हैं । 'प्रबंधचिंतामणि' में मुंज और मृणालवती की प्रेम कथा रास चन्द के अतिरिक्त विविध छन्दों में लिखी गई है ।
2. 'संदेश रासक' (1142ई) में एक प्रोषितपतिका विरहिणी की ललित कथा है । लेखक अब्दुल रहमान हैं । काव्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट है ।
3, 'पृथ्वीराज रासो' (ई. तेरहवीं सदी) । चन्द वरदाई लेखक हैं । पृथ्वीराज की कथा है ।

इसके कई पाठ हैं, कम से कम चार । छन्द संख्या 325 से 10000 तक है । इसलिए इसकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता संदिग्ध है । लेकिन काव्य की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट रचना है ।

4. 'हम्मीर रासो' (1293 ई. के लगभग) रचना नहीं मिली । 'प्राकृत पैंगलम्' में अनेक छन्दों में हम्मीर की कथा है । छन्द वीर रस के हैं और काव्य की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट हैं ।

5. 'बुद्धि रासो' (तेरहवीं शती ई.) में जल्ह कवि द्वारा रचित है । इसमें एक राजकुमार और नायिका जलधितरंगिनी की प्रेमकथा को नाना छन्दों में वर्णन किया गया है । इसी कवि का 'जयचन्दरासो' नामक कोई ग्रंथ होने का अनुमान किया गया है ।

6. परमाल रासो' (सोलहवीं शती विक्रमी) की है । यह पृथ्वीराज रासों के प्रसिद्ध महोबा खंड का प्रक्षिप्त अंश है ।

7. 'राउ 'जैतसीरो रासो' (1543 ई. लगभग) में बीकानेर के महाराज जैतसी के युद्ध का वर्णन है । अज्ञात कवि, छंद संख्या 90 है ।

8. ' विजयपाल रासो' (1543 ई. के लगभग) का रचयिता है नल्हसिंह भाट । इसमें विजयगढ़ के राजा विजयपाल की दिग्विजय का वर्णन है ।

9. माधवदास चारण रचित 'राम रासो' में राम कथा है । इसमें लगभग 1600 छंद हैं ।

10. 'राणा रासो' (1618 ई. पूर्व) दयाल कवि ने लिखा है ।

11. रतन रासो (1623 ई. लगभग) में रतलाम के राजा रतनसिंह का चरित है ।

12. 'कायम रासो' में न्यामत खाँ जान' ने कायमखानी दंश के नवाबों का चरित वर्णन किया है । इसका समय सवत् 1634 -1653 है ।

13. 'शत्रसाल रासो' (1653ई. के लगभग) में बूंदी नरेश शत्रसाल का चरित है । कवि हैं राव डूंगरसी । छन्द लगभग 500 हैं ।

14. 'माँकण रासो' में विचित्र विषय लिया गया है । इसमें मत्कुण -खटमल का चरित्र वर्णित है । कवि हैं कीर्त्तिसुन्दर की कृति है । रचना 170० ई. की है 39 छन्द हैं ।

15. 'सगतसिंह रासो' में राणाप्रताप के भाई शक्तिसिंह का चरित्र 943 छन्दों में जिरिधरचारण ने लिखा है । समय है 1698 ई. ।

16. 'हम्मीर रासो' । (1728 ई.) जोधराज की रचना है । इसमें रणथम्भौर के हम्मीद का चरित्र वर्णन है । लगभग 1000 छन्द हैं ।

17. 'खुमाण रासो' (वि. 18वीं) दलपत विजय ने लिखा है । खुमाण वंश का इतिहास है । (813 से 120०ई.) 5000 छन्द हैं ।

2.2.2 गीतनृत्यपरक रासो धारा :

1. 'उपदेश रसायन' (1143 ई.) जिनदत्त सूरी की रचना है । इसमें जैन धर्म विषय का उपदेश है ।
2. शालिभद्र सूरि की रचना 'बुद्धि रास' (1184 ई) भी उपदेशात्मक है ।
3. 'भरतेश्वर बाहुबली रास' (1184ई.) जिसमें ऋषभदेव के दो पुत्र भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राजसत्ता के लिए हुए संघर्ष की कथा है । ' जीवदयारास' (1200ई.) 'चन्दनबाला रास' (1290ई.) 'जम्बूस्वामी रास' (1209ई.), 'रेवन्तगिरि रास' (1231ई.) आदि सब जैनधर्म से संबंधित हैं । ऐसी अनेक (कई सौ) रचनाएँ मिलती हैं । इनका साहित्यिक महत्व नहीं है ।

एक विशिष्ट रचना है 'बीसलदेव रास' लेखक है नरपति नाल्ह - रचनाकाल 1281 के लगभग । इसमें अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव की स्त्री से रूठ कर ओड़िशा जाने की कथा है ।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त की खोज से मालूम हुआ है कि रासो के इन दो भेदों पर ध्यान न देने के कारण ही 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर अनेक कल्पनाएँ की गईं । दोनों धाराओं के परिशीलन से मालूम होता है कि रासो काव्यों में विषयवस्तु, रस, शैली, छन्द आदि का कोई प्रतिबंध नहीं था । इसमें धार्मिक लौकिक विषयों और सभी रसों को स्थान मिला है । रचना छोटी भी हैं और बहुत बड़ी भी हैं ।

'पृथ्वीराज रासो' प्रबंध काव्य है । इसमें पृथ्वीराज की जीवनकथा है । श्रृंगार और वीर मुख्य रस हैं, पर अन्य रसों का भी समावेश है । इसकी कथा मूलत: ऐतिहासिक है, पर बाद में अनेक कवियों ने इसमें प्रक्षिप्त अंश भर दिए हैं । फलस्वरूप इसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिह्न लग गया है । ठीक यही बात इसके आकार को लेकर है । इसके चार संस्करण मिलते हैं - अतिलघु, लघु, वृहत् और वृहत्तम । ढाइसौ छन्दों से लेकर दस हजार छंदों तक इसका विस्तार है । इसकी भाषा भी मिश्रित है । अनेक समय में लिखी गई है । इस प्रकार हिंदी के इस प्रथम महाकाव्य की प्रामाणिकता को लेकर संदेह हुआ है । फिर भी शशिव्रता विवाह और कैमास वध जैसे अंश निश्चित रूप से मूल रचना के अंश थे , ऐसा सभी विद्वानों का मत है ।

ऊपर के विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो की लोकप्रियता ही इसके आकार और विकार का मुख्य कारण है । वैसे कहा गया है कि कवि ने इसकी रचना करके पुत्र जल्हण के हाथ

उसे देकर गजनी चले गए तो फिर लौटे नहीं । 'जल्हणों ने क्या -क्या किया, वह हमें साफ मालूम नहीं । लेकिन ऐतिहासिकता और रूप की विविधता को लेकर इस ग्रंथ पर बहुत विवाद हुए । लेकिन इसकी काव्यात्मकता ने इसे मूल्यवान सिद्ध कर दिया । यह एक अत्यंत उत्कृष्ट काव्य है । इसमें दो राय नहीं हो पायी । अंगीरस वीर है, सहायक शृंगार है, अन्य रसों का यथास्थान सुन्दर परिपाक हुआ है । विभिन्न मानवीय भावों, अनुभवों का सुन्दर चित्रण हुआ है । अनेक प्रसंग और स्थल मार्मिक हैं । पाठकों को रचना ने खूब रिझाया है । इसका कलापक्ष भी अति सशक्त है । भाषा की संप्रेषणीयता छन्दों की बहार, अलंकारों का सौन्दर्य, चरित्र -चित्रण आदि में कवि को असामान्य सफलता मिली है । 61 समय (अध्याय) वाला यह विशाल ग्रंथ हिंदी का प्रथम महाकाव्य और सभी भारतीय भाषाओं में एक अनुपम कृति है । आगे चलकर इसीके अनुसारण में अनेक वीरकाव्य लिखे गए हैं, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है । हिंदी वीर काव्य उसकी संपत्ति है, जिसमें पृथ्वीराज रासो पदक के समान शोभायमान है । इसकी भाषा की विकृति और विविधरूपता के बावजूद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वीकारते हैं कि 'चन्द वरदाई शब्दों के डिक्टेटर थे । वे लाठी लेकर उनकी परेड़ करवाते थे । किसी के हाथ-पैर टूट जाय तो क्या ?'' अर्थात् चन्द का शब्द भंडार विशाल था, शब्द रूपों में मनमानी विविधता है ।

2.3 ऐतिहासिकता :

'पृथ्वीराज रासो' में प्रसिद्ध हिंदू सम्राट दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान का जीवन -चरित विस्तार से वर्णित हुआ है । पृथ्वीराज द्वारा लड़ गई लड़ाइयों का, उसके वीरत्व और युद्ध-कौशल का, उसकी अनेक चारित्रिक विशेषताओं और अनेक विवाहों का वर्णन है । ढाई हजार पृष्ठों के इस विशाल ग्रंथ में जितने वर्णन है, वे सभी ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं हैं, क्योंकि काव्यग्रंथों में ऐतिहासिक ढांचे पर कल्पना का पुट चढ़ाकर ही उसे रसीला बनाया जा सकता है । कल्पना का अधिक प्रसार हो तो ऐतिहासिकता क्षुण्ण हो जाती है । खास कर जब रचना में काफी प्रक्षेप हुआ हो, जैसा कि 'पृथ्वीराज रासो' के बारे में कहा जाता है ।

विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित अनेक घटनाओं, पात्रों को इतिहाससम्मत न होना प्रमाणित किया है । यहाँ तक कि पृथ्वीराज के मातापिता, राजधानी, विवाहिता पत्नियों के बारे में घातक भूलें हैं । अतिशयोक्ति, अत्युक्ति और आनावश्यक विस्तार के झाड़-झंखांड़ों को काटकर मूल रूप तक पहुँचना कठिन काम है । कल्पना और प्रक्षेप दो आवरणों को काट कर पाठकों को आगे बढ़ना है ।

फिर भी इतना तो निश्चित है कि पृथ्वीराज ऐतिहासिक पात्र हैं । उसके पिता राजा सोमेश्वर थे । उनका मूल स्थान बहिला वन था । अजमेर और दिल्ली पर उन्होंने शासन किया था । एक वीर योद्धा के रूप में उनकी बड़ी ख्याति थी । उन्होंने कई राज्यों पर विजय पायी थी । भले ही मरुधरा,

मरुदंड, रणथंभौर, कालिंजर आदि वर्णित सभी युद्ध इतिहाससम्मत न हों, पर कुछ तो हैं । पृथ्वीराज का परमार्दिदेव (चन्देल शासक) पर विजय तो सुनिश्चित घटना थी । मदनपुर के शिलालेख (सं. 1239) इसका प्रमाण है ।

शहाबुद्दिन गोरी के साथ पृथ्वीराज के सात बार युद्ध होने का उल्लेख है । पर कम से कम दो बार तो यह युद्ध हुआ ही । एक में पृथ्वीराज विजयी हुआ तो दूसरे में पराजित । रासो में सरवर और विश्वासर ये दो युद्ध स्थान बताए गए हैं । इतिहास में एक ही स्थान नवरहिन्द या सरहिंद का नाम आया है । 1191 और 1192 ई. इन दो सालों में युद्ध हुए । इतिहास कहता है कि पृथ्वीराज युद्ध में मारा गया । रासो में पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले जाना, वहाँ कवि का पहुँचना, शब्दवेधी बाण का कमाल देखने को गोरी को राजी करना, बाण से गोरी का मारा जाना , फिर कवि और पृथ्वीराज दोनों की आत्महत्या आदि वर्णित घटनाएँ कल्पित हो सकती हैं । परंतु इसमें पृथ्वीराज के अचूक युद्धविक्रम दिखाने का प्रयास है । मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज को भगोड़ा बताया है, जो अतिरंजन है, क्योंकि राजपूत सम्मुख रण में मारे जाने को वीरगति मानते थे ।

पृथ्वीराज और जयचन्द का समकालीन होना ऐतिहासिक घटना है । यद्यपि जयचन्द का राजसूय यज्ञ और संयोगिता स्वयंवर जैसी घटनाओं का उल्लेख इतिहास में नहीं है । महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इन्हें इतिहास विरुद्ध बताया है, क्योंकि

1. जयचन्द का दानपत्र 2. सं 1460 में कवि जयचन्द सूरि द्वारा रचित 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रणमंजरी' नाटिका में इसका उल्लेख न होना । परंतु ये दोनों भी काव्यग्रंथ ही हैं । सनमें प्रसिद्ध परमार्दिदेव के युद्ध का वर्णन भी नहीं है अतएव कुछ प्रसंगों का न होना उन्हें अनैतिहासिक प्रमाणित नहीं करता । जयचन्द का नाम देशद्रोही की पंक्ति में आता है । उसे आसानी से इतिहास विरुद्ध नहीं कहा जा सकता ।

कयमास वध प्रसंग ऐतिहासिक है । क्योंकि कयमास पृथ्वीराज का अमात्य था, इसकी चर्चा 'पृथ्वीराज विजय' की खंडित प्रति में भी आती है । 'पृथ्वीराज प्रबंध' (पुरातन प्रबंध संग्रह) के अनुसार कयमास का वध नहीं निष्कासन हुआ था । अतएव कयमास अमात्य था, यह ऐतिहासिक तथ्य है । उसके वध या निष्कासन आदि बातें कल्पनात्मक हो सकती हैं ।

इसी प्रकार गोविन्दराज का मुख्य सामंत होना और पृथ्वीराज के कार्य में उसका मारा जाना भी इतिहाससम्मत है । भीम चालुक्य पृथ्वीराज का समकालीन था, यह इतिहास है । दोनों का युद्ध भी हुआ होगा, यह संभव है । पृथ्वीराज के पक्ष -विपक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं । शहाबुद्दीन के तीन योद्धा - खुरासान खाँ, तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ का नाम भी आता है । इनमें से अवश्य कुछ सत्य घटनाओं से संबंधित हैं । कुछ कल्पित भी हैं ।

अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पृथ्वीराज रासो' में ऐतिहासिक, तथ्य तो हैं, पर उसके साथ अनेक काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का वर्णन भी है, जो एक काव्यग्रंथ होने के कारण स्वाभाविक है । प्रक्षेप की समस्या से इस महान ग्रंथ की जटिलता बढ़ गई है ।

2.4 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता :

चन्द वरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का प्रथम महाकाव्य है । दुर्भाग्य से इस ग्रंथ का कलेवर कालक्रम से अनेक प्रक्षेपकारों द्वारा कलुषित हुआ है । इसमें अनेक घटनाएँ और पात्र हैं, जो ऐतिहासिक नहीं लगते । दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है - इसकी भाषा की विविधरूपता । अनेक स्थानों पर प्रयुक्त भाषा बहुत बाद की लगती है । तीसरी बात है - इसके आकार में परिवर्तन । इसके अनेक संस्करण मिलते हैं । सबसे बड़ा ग्रंथ 2500 पृष्ठों का है । उसमें 61 समय (अध्याय) हैं । लघुतम संस्करण में छन्द संख्या तीन सौ के लगभग है । इसलिए विद्वानों में इस ग्रंथ की प्रमाणिकता को लेकर काफी विवाद रहा है । संक्षेप में इस विवाद पर विचार कर लेना प्रासंगिक होगा ।

क) कुछ विद्वान जिनमें मुख्यत: कर्नल टॉड, मिश्रबंधु, श्यामसुन्दर दास तथा मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डेय का नाम लिया जा सकता है - 'रासो' को प्रामाणिक मानते हैं ।

ख) कुछ लोग सर्वथा अप्रामाणिक मानते हैं । ये लोग न तो चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं और न ही रचना को उसके समय की मानते हैं । क्योंकि इसकी अनेक घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती । रामचन्द्र शुक्ल, म मो गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डा. बूलर, रामकुमार वर्मा आदि

ग) तीसरा वर्ग यह मानता है कि ग्रंथ की रचना और कवि पृथ्वीराज के समकालीन थे । परंतु बाद में ग्रंथ में अनेक लोगों ने जोड़ -घटाव किया है । इसलिए उसका मूल रूप विकृत हुआ है । डा. सुनीति कुमार चटर्जी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अगरचन्द नाहटा आदि इसी वर्ग में आते हैं ।

2.4.1 अप्रामाणिक मानने के कारण :

1. अनेक इतिहासविरोधी घटनाओं का समावेश 'रासो' ग्रंथ में है । शिलालेख, ताम्रपत्र, 'पृथ्वीराज विजय' ग्रंथ में उल्लिखित अनेक घटनाओं का 'रासो' में भ्रांतिपूर्ण वर्णन है । जब 'रासो' का प्रकाशन रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बैगाल,' ने रासो की छपाई शुरू की थी, तभी डा. बूलर को 'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रंथ की एक खंडित प्रति मिली जिसमें वर्णित घटनाएँ 'रासो' में वर्णित घटनाओं की अपेक्षा ज्यादा इतिहास सम्मत थी । तब बूलर ने 'रासो' का प्रकाशन रोक दिया और ऐतिहासिक खोज की ओर ध्यान दिया ।

खोज से पता चला कि 'रासो' में दिए गए अधिकांश नाम और चौहान, चालुक्य तथा परमार वंश के राजाओं के तथ्य प्राचीन ग्रंथ और शिलालेखों आदि से मेल नहीं खाते । चौहानों को 'रासो' में अग्निवंशी' माना गया है, जबकि उन्हे सूर्यवंशी कहा गया था । पृथ्वीराज की माता का नाम, उनका वंश, पुत्र आदि का नाम भी इतिहास और 'पृथ्वीराज विजय' से भिन्न है । 'रासो'में पृथ्वीराज की माता का नाम कमला और अनंगपाल की कन्या बताया गया है, जो सही नहीं है । 'रासो'में जयचन्द को अनंगपाल का नाती और राठोरवंशी बताया गया, जो गलत है । शिलालेखों में जयचन्द को गहड़वार क्षत्रिय कहा गया है । 'रासो' में वर्णित जयचन्द के साथ शत्रुता, संयोगिता स्वयंवर आदि घटनाएँ भी असंभव लगती हैं । पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीम का वध भी सही नहीं है, क्योंकि राजाभीम के दानपत्र से पता चलता है कि वह पृथ्वीराज के बाद ५० वर्ष जीवित था । इसी प्रकार शहाबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी अनैतिहासिक है ।

2. 'रासो' में दी गई तिथियाँ भी अशुद्ध हैं, जो इस रचना के काल-वैषम्य के उदाहरण हैं । 'रासो'में दिए गए संवत् और ऐतिहासिक संवत् में लगभग 100 सालों का अंतर है । पृथ्वीराज के जन्म आ मृत्यु इतिहास के अनुसार संवत् 1218 और 1258 हैं, जबकि 'रासो' में 1115 और 1158 दिए गए हैं । शहाबुद्दीन की मृत्यु संवत् 1263 में हुई थी, लेकिन 'रासो' के अनुसार वह सवंत् 1139 है । इतिहास में शहाबुद्दीन का वध गक्खरों द्वारा हुआ था । रासो में यह पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण द्वारा गया लिखा है । आबू पर भीम चालूक्य का आक्रमण शहाबुद्दीन के साथ पुण्डरीक का युद्ध आदि की तिथियाँ भी अशुद्ध हैं ।

प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी भूलें नायक पृथ्वीराज के किसी समकालीन और संबंधित कवि द्वारा हो सकती हैं ?

3. भाषा की कसौटी पर तो 'रासो' सबसे ज्यादा अप्रामाणिक रचना लगती है । ग्रंथ में अरबी-फारसी के इतने अधिक शब्द हैं, जो उस समय हिंदू -मुसलमानों के प्रारंभिक संपर्क में अपनाए गए हों ऐसा संभव नहीं लगता । इसमें अनुस्वारान्त शब्द भरे पड़े हैं, उसका कोई कारण नहीं जान पड़ता । प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों की गलत-सलत रूपावलियाँ तथा नई और पुरानी विभक्तियों का मिश्रण विचित्र भाषिक रूप प्रस्तुत करता है । पता नहीं कितने लेखकों ने कितने समय तक इस रचना में प्रक्षेप भरे हैं ।

4. सबसे बड़ी बात है कि ग्रंथ के रचना-काल के संबंध में कोई निश्चिय नहीं हो पाता । गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसकी रचना हम्मीर काव्य के बाद सवंत् 1600 के आसपास माना है । महाराणा रामसिंह के नौ चौकी बांध के शिलालेख संवंत् 1730 में उल्लेख आया है । महाराणा अमरसिंह ने बिखरे 'रासो' का संकलन तैयार किया था । हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि इसका

रचनाकाल सं. 1455 हो सकता है । मोतीलाल मनारिया इसका काल 1788 सवंत् मानते हैं । अत: संप्रति प्राप्त 'रासो' ग्रंथ का निर्माण इसी समय हुआ होगा । इसके साथ यह संभावना भी है कि ग्रंथ पहले रचित हुआ है, उसका आज यह रूप है ।

2.4.2 प्रामाणिकता के पक्ष में :

1. पृथ्वीराज चौहान का चरित किसी काव्य के नायक बनने के लिए उपयुक्त है, क्योंकि वह वीरों का शिरोमणि था । उसके चरित्र में धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान थे । वह एक ऐसा ऐतिहासिक पात्र है, जिसने साहस और वीरत्व के साथ विदेशी आक्रमण का मुकाबला किया । रासो में प्रसंग आता है जब कविपत्नी यह प्रश्न करती है कि क्या आप किसी मनुष्य को काव्यनायक बनायेंगे, तब कवि ने जवाब दिया कि पृथ्वीराज का चरित्र किसी देवता से कम नहीं ।
2. अक्सर काव्य में कल्पना का प्रयोग होता है । अनेक पात्र और घटनाएँ विशेष प्रयोजन से कल्पित की जाती हैं । अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी होता है । ऐसे में उनके मूल उद्देश्य अधिक स्पष्ट होते हैं ।
3. अनेक लेखकों द्वारा अनगिनत क्षेपक अंश इस महान ग्रंथ में संयोजित हो गए हैं । इसी कारण उनमें ऐतिहासिक भ्रांतियाँ आ गई हैं । भाषा की विविधता का कारण भी यही है ।
4. कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक भूलों के बचाव किए हैं । अधिकतर यह माना गया है कि पृथ्वीराज के जीवन काल में ही कवि चन्द वरदाई द्वारा यह ग्रंथ रचित हुआ । उसका मूल रूप लघु ही था । वह जाली नहीं था । रासो की जो लघुतम प्रति मिली है, उसीसे अधिकांश शंकाओं का समाधान हो जाता है । विद्वानों ने उसे मूल रूप स्वीकार किया है । इस प्रति में अनेक भ्रांतियों का निराकरण हो जाता है -
5. राजपूत कुलों की उत्पत्ति आबू के अग्निकुंड से होने की कथा सुजान चरित्र, हम्मीर काव्य, पुष्कर तीर्थ आदि में मिलती है ।
6. वंशावली के संबंध भी यह देखा गया है कि 'पृथ्वीराज विजय' और रासो में कुछ थोड़े से नामों के अंतर हैं ।
7. अनंगपाल और पृथ्वीराज के संबंध की अशुद्धि इस प्रति में भी है ।
8. संयोगिता विवाह प्रसंग का वर्णन सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है । यह बड़ा काव्यात्मक और मार्मिक भी है ।

9. पृथा का विवाह और शहाबुद्दीन समरसिंह युद्ध का उल्लेख इस प्रति में नहीं है ।

2.4.3 निष्कर्ष :

ऐसे अनेक तर्क प्रामाणिकता के पक्ष -विपक्ष में दिए जा सकते हैं । दिए जाते हैं । लेकिन निस्संदेह 'पृथ्वीराज रासो' एक अमूल्य काव्यग्रंथ है । इसकी काव्यात्मकता ही इसकी लोकप्रियता का कारण रहा है । निश्चित रूप से पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्द ने इसे लिखा । बाद में पुत्र जल्हण को दिया । जल्हण ने इसे पूरा करने के लिए अनेक अंश जोड़े । संभवत: दूसरे लोगों ने भी इस स्थिति का लाभ उठाया और अनेक प्रक्षेप भर दिए । इससे ग्रंथ का स्वरूप ही बिगड़ गया । हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस विषम स्थिति का वर्णन निम्न शब्दों में किया है -

''इस निरर्थक मंथन से जो दुस्तर धन-राशि तैयार हुई है, उसे पार करके साहित्यिक रस तक पहुँचना हिंदी साहित्य के विद्यार्थी के लिए असंभव-सा व्यापार हो गया है ।''

परंतु इसके बावजूद उन्होंने स्वयं संपादन करके 'रासो' का एक संस्करण प्रकाशित किया है । उसे वे मूल ग्रंथ के निकट मानते हैं ।

2.5. 'पृथ्वीराज रासो' का काव्यत्व :

'रासो' की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता पर विवाद चलते रहे, लेकिन उसकी काव्यात्मकता सर्वथा प्रशंसनीय है । अतएव इसके साहित्यिक महत्व पर विचार होना चाहिए ।

काव्यनायक पृथ्वीराज के जीवन के दो प्रमुख पहलू थे - युद्ध और विलास । अतएव वीर और श्रृंगार 'रासो' के दो प्रधान रस हैं । अन्य रसों की भी अवतारणा है, लेकिन वो गौण हैं । परंतु सभी रसों के परिपाक में कवि निपुण जान पड़ता है । क्योंकि कवि की प्रत्यक्ष अनुभूति वर्णन को सजीवता प्रदान करती है । चन्द पृथ्वीराज के घनिष्ठ दरबारी और मित्र थे । नायक के जीवन की प्रत्येक घटना को उन्होंने अपनी आँखों से देखा था । फलस्वरूप 'रासो' में काव्यात्मकता सर्वत्र विद्यमान है । कवि को मार्मिक स्थलों की सही पहचान है । वह उनका सरस वर्णन करता है । प्रकृति उसके लिए आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में आकर्षक है । अतएव वस्तु स्थान और भावनाओं का सुन्दर संयोग रासो के वर्णनों में मिलता है ।

'पृथ्वीराज रासो' एक महाकाव्य है । इसमें कथा-प्रबंध और वस्तु संगठन का अच्छी तरह निर्वाह हुआ है । काव्यशास्त्र के अनुसार इसमें धीरोदात्त नायक का जीवन-चरित है । एक कथा आधिकारिक है और प्रासंगिक अनेक कथाएँ हैं । वे सुन्दर ढंग से संयोजित हुई हैं । प्रक्षेप की भरमार

होते हुए भी यह संयोजन ढीला नहीं हो पाया है । इसमें अनेक (69) समय या अध्याय हैं । इसमें सूर्य-चन्द्र, दिवारात्रि, संध्या - प्रत्युष, मध्याह्न का वर्णन है । प्राकृतिक दृश्यों वनों, पहाड़, सर-सागर, उपवन, विभिन्न ऋतुओं का सविस्तृत वर्णन है । ग्राम-नगर, खल-साधु, स्वर्ग-नरक, यात्रा-पशु आदि सब हैं । मानवीय भावनाओं का अच्छा चित्रण है । विवाह, संयोग-वियोग, अनुराग, विराग, सौन्दर्य, मान-विलास सभी स्थितियों को स्थान मिला है । युद्ध की सज्जा, अभियान, सेना, अस्त्रशस्त्र, युद्धकौशल, राजनीति इत्यादि के साथ वीरत्व, साहस, निर्भीकता, वीरगति आदि का भावात्मक प्रसंग हैं । प्रसंगानुसार, भाषा, छन्द, अलंकार आदि की योजना हुई है ।

युद्ध वर्णन में रासोकार का मन रमता है । युद्ध के अभियान में चल रही सेना की यात्रा का जीवंत वर्णन मिलता है । सैन्य -सज्जा, राजसी ठाट, सैन्य -चालना, व्यूह-रचना, पशुओं का चीत्कार, शस्त्रों की आवाजें, तलवारों की चमक, युद्ध की विभीषिका इत्यादि एक-एक का सांगोपांग चित्र मिलते हैं । जिसने युद्ध को अपनी आँखों से देखा है, वही ऐसे वर्णन दे सकता है । इसी प्रकार वीरों का साहस दर्प, पराक्रम, गर्वोक्ति, जान की परवाह न करने वाला वीरत्व, रोमांटिक मिजाज आदि के वर्णन में कवि को बड़ी सफलता मिली है ।

*** यवन सैन्यवाहिनी का एक संश्लिष्ट चित्र नीचे की पंक्तियों में**

पुरांसान सुलतांनषं धार मीरे ।
बलख स्यो बल तेग अच्चूक तीरे ॥
रूहंगी फिरंगी हलंवी समानी ।
ठटो ठट्ट बल्लोचं ढालं निसानी ॥
मंजारी चषी मुष्ष जंबूक लारी ।
हजारी हजारी इकै जोध भारी ॥
तिंन पष्षंर पीठ हय जीन सालं ।
फिरंगी कति पास सुकलात लांल ॥
तहं बाध बाधं मरुरी रिछौरी ।
धनं सार सम्मूह अरु चीर झौरी ॥
एराकी अरबी पटी तेज ताजी ।
तुरक्की महाबांन कम्मान बाजी ॥

*** घमासान युद्ध का यह चित्र देखिए -**

तुम लेहु लेहु मुष जंपि जोध, हन्नाह सूर सब पहिरि क्रोध
पहुँचे सु जाय तत्ते तुरंग, भ्रुअभिरन भूप जुटि जोध अंग ।
कम्मान बांन छुटहिं अपार, लागत लोह रमि सारमार ।
घमासान धरन सब वीर खेत, घन स्रोत बहत अस रकत रहे ।

*** रणभूमि की झाँकी यह है -**

घर उप्पर भर परत करत अति युद्ध महा भर ।
कहुँ कमंछ, अस गृद्ध, कहुँ करि चरन अन्तसरि ।
कहौं दत्त मंत है षुपरि कुम्भ भ्रसुडिण्ड्डहि रुंड
हिन्दुवांन रान भय भांन षुष, गही तेग चहुँन जब ।

वीरों का उत्साह कायरों की घबराहट, घायलों की चीख, पशुओं का गर्जन, कटे अंगों का नर्तन युद्ध की भयावहता को घनीभूत करते हैं ।

*** शृंगार वर्णन :**

1. शृंगार रस का मुख्य उपादान है 'नारी का सौन्दर्य' । नारी के अंग-प्रत्यंगों की शोभा जिसे नख-शिख भी कहा जाता है । 'पृथवीराज रासो' में प्रर्याप्त मात्रा में है, क्योंकि इसमें अनेक नारियों का विवाह प्रसंग है । इंछिनी, पृथा, संयोगिता और शशिव्रता आदि नायिकाओं का रूप-सौन्दर्य के वर्णन में कवि की कुशलता सराहनीय है । इसके अलावा इन्द्रावती, हंसावती, अप्सराओं और दासियों के रूप सौन्दर्य वर्णन में कवि का मन रमा है । इनमें अलंकारों का काफी प्रयोग है ।

वय संधिरु बाल प्रमान ब्रनं । कहि त्रोटक चन्द प्रमान सुनं ॥
वय स्याँम रु शैशव अकुरवं । अह अंत निसाणम संकरयं ॥
जल सैसव सुद्ध समान भयं । सु मिलै जनु षित्तहु बाल जती ॥ (19-20)

अथवा

ससिर अंत आबन बसंत । बालह सैसव नम ।
अलिन पंष कोकिल सुकंठ । सजि मुंड मिलत भ्रम ॥(123)

* अतिसुन्दर वर्णन -

चित्र रेष बाला बिचित्र । चंदी चन्द्रानन ।

स्वर्ग मग्ग उत्तरी । चित्त प्रुत्तरि परमानन ॥

काम बाम सुंजरी । बाल अंजुरी सु लच्छिव ॥

मार कलह उत्तरी । पुब्ब अच्छरि सुलच्छ्यि ॥

लछिन बत्तीस लच्छी सहज । गवरि पुजज दिन प्रति करै ॥

* सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन -

चंद बदन चष कमल, भौंह जनु भ्रमर गंधरस ।

कीर नास बिंबोष्ठ, दसन दामिनी दमक्कत ॥

भुज म्रनाल कुच कोक, सिंह लंकीगति वारुन ।

कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आरुन ॥

अलसंग नयन मयनं मुदित, उदित अनंगह, अंग तिहि ।

अति सुमंत्र आरम्भ वर, देषत भूलत देव जिहि ॥

हंसावती के अंग-प्रत्यंगों के वर्णन में आलंकारिक कलात्मक कौशल अपनाया गया है । सभी -अंगों की तुलना अनेक उपमानों से की गयी है । नयन आदि का वर्णन देखिए -

उपम्म नैन ऐन सो, मनो कि मौन मैन सो ।

कवी निसंक जानयौ, उपम्म चित्त भानयो ॥

उनकी शोभा तो ज्यातिर्मय है -

रतन्न बिम्ब जानयं, सु चन्द वी अमानयं ।

त्रिवल्लि ग्रीव सोभई, जु योति पुंज लोभई ।

चाल तो काम के रथ जैसी है -

कि काम रथ्थ चक्रए, चलन्त एडि वक्रए ।

उलट्टि रंभ - जंघन, करी सु नाम पिंडनं ।

दासियाँ पानी भर रही हैं । उनके चारु अंगों का वर्णन देखिए -

द्रिग चंचल चंचल तरुनि, चितवत चित्त हरंति ।

कंचन कलस झकोर कै,सुन्दरि नीर भरंति ।

2. नारियों की शारीरिक चेष्टाओं, हावभावों के साथ उनके मनोभावों के मनोहारी वर्णन मिलते हैं । वस्तु वर्णन के साथ भाव की अभिव्यंजना से वर्णन अत्यंत रसमय हुए हैं । सुन्दरियों के कटाक्ष का संश्लिष्ट चित्र निम्न में दिया जाता है -

दुराय कोय लोचने । प्रतष्ष काम मोचने ।

अवधि ओट भौहये । चलति सोह सोहये ।

3. संयोग और वियोग (विप्रलंभ) श्रृंगार वर्णन :

संयोगिता का नखशिख वर्णन और संयोग श्रृंगार का वर्णन है -

संजोग जोग जप संत संठ, आनन्द गान जिन करिय कंठ ।

वर रचिय केस विचि सुमन पंति बिच धरे जमन जलगंगकांति ।

सिर मद्धि सीस फूलह सुभास, किय जमन अद्ध सुन गिरि प्रकास ।

* * *

वर जंघ रंभ विपरीत संझ कै पिंढि दिष्ट मनमंथ संझि

ओपम्म बीच कबिचन्द सादि, मनमथ्य हव्य उत्तरि पराधि ॥

विरह वर्णन के लिए संयोगिता के अंतिम समय देखें -

चर आये ढिल्लिय नयर, दसमि सुदिन अंमार ।

बुद्धवार एकादसी, चली वरन स्रगदार ॥

आदि -

2.6. महाकाव्यत्व :

आकार को देखकर ही नहीं, रचना -पद्धति के आधार पर भी 'पृथवीराज रासो' को हिंदी का थम महाकाव्य माना गया है । रामचन्द्र शुक्ल, मोतीलाल मेनारिया और विपिन विहारी त्रिवेदी ने अनेक तर्क देकर 'रासो' को महाकाव्य स्वीकार किया है । फिर भी यह सही है कि सभी काव्यशास्त्रीय लक्षण रासो में लागू नहीं हो सकते । एक खामी अवश्य है कि इसमें जातीय चित्तवृत्तियों और कार्यकलापों को अभिव्यक्ति नहीं मिली है । इसका कारण उस युग में राष्ट्रीयता का स्वरूप नहीं बन पाया था । क्योंकि 'स्थानीयता' प्रधान तत्त्व थी ।

फिर भी महाकाव्य के अनेक लक्षण 'पृथवीराज रासो' में पाये जाते हैं ।

1. महाकाव्य का नायक धीरोदत्त, कुलीन क्षत्रिय और गुणवान होना चाहिए । पृथवीराज चौहान ऐसा ही चरित्र है । प्रारंभ में ही कवि और कविपत्नी के बीच संवाद होता है । कवि सिद्ध करता है कि पृथवीराज का चरित्र किसी देवता से कम नहीं है । वह सौम्य, त्यागी, कार्यकुशल, तेजस्वी, उत्साही, सुशील, श्रद्धेय, क्षमाशील, दानी, दृढ़व्रती, उत्साही और वीर है ।

2. महाकाव्य का कथाफलक विस्तृत हो और उसमें अनेक सर्ग हों ! 'रासो' में नायक का जीवन-चरित उपजीव्य है और 69 समयों या सर्गो में वह लिखा गया है । इसमें सभी नाटकीय संधियों का निर्वाह हुआ है । सर्ग न छोटे हैं, न ही बड़े । सर्गान्त में आनेकी सूचना है ।

3. महाकाव्य में एक अंगी रस होता है । बाकी सभी रसों का भी परिपाक होना चाहिए । इस दृष्टि से 'रासो' का अंगीरस वीर ही है । शृंगार सहयोगी है । साथ ही अन्य रसों की निष्पत्ति भी यथास्थान हुई है । कहा है -

उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति नव रसं ।
षड भाषा पुराणं च, कुरानं कथित मया ।
रासो असंव नव रस सरस चन्द-छन्द किय अभिय सम ।
शृंगार वीर करुना बिमच्छ, भय अद्‌भुत हँसत सम ।

(बानवध प्रस्ताव)

4. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा लोक प्रसिद्ध होना चाहिए । उसके अंत तक मानवीय करुणा की धारा प्रवाहित होनी चाहिए । 'रासो' की कथा इतिहास पर ही आधारित है । पृथवीराज ऐतिहासिक चरित्र है । यह सही है कि प्रक्षेपों के कारण इसमें अनेक इतिहासविरुद्ध तथ्य आ गए हैं । पर उनमें अनेक लोक प्रसिद्ध इतिवृत्ति भी हैं । पृथवीराज के जीवन की अंतिम परिर्णात करुण है । उससे महान ऐतिहासिक परिणाम निकले हैं । देश की स्वतंत्रता छिन गई ।

5. 'रासो' महाकाव्य मंगलाचरण/ आशीर्वाद/ नमस्कार/ वस्तुनिर्देश से प्रारंभ हुआ है । उसमें खलनिन्दा, सज्जन -प्रशंसा है ।

सरस काव्य रचना रचौ, खल जन सुनि त हसंत ।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान स्वभाव भुसंत ॥
निमित्त सुजन गुन, रचिये तन मन फल ।
जू का भय जिय जानि कै, क्यों डारियै दुकूल ॥

(छ. 51, 52)

चार फलों में से एक की सिद्धि होनी चाहिए । रासोकार ने सभी अर्थों को माना है -

''पावहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम ।
निरमान मोष पावहि सुधाम ।''

(छन्द 222, समय -63)

6. जीवन और प्रकृति के सभी दृश्यों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । वन-वर्णन, ऋतु, सागर, जलाशय, स्वर्ग-अपवर्ग, अंधकार, राकारजनी, वियोग, युद्ध-विरह का आदि का तो अप्रतिम वर्णन है ।

7. अनेक छंदों का प्रयोग है । 'रासो' के छन्दपरिवर्तन के रुचिकर कौशल के बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी की टिप्पणी सुन्दर है -''रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कंपन उत्पन्न करते हैं ।'' 'रासो' में 72 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

8. वस्तुओं, चरित्रों और घटनाओं का सांगोपांग वर्णन 'पृथवीराज रासो' की बड़ी विशेषता है । इनमें कवि की बहुज्ञता और पांडित्य हेतु रूप में हैं । रासोकार ने रूपक योजना द्वारा लगभग सात हजार वर्णन प्रस्तुत किए हैं । विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के लिए वस्तु -वर्णन की जो लंबी सूची दी है, वे सब 'रासो' में उपलब्ध हैं । वन, उपवन, पर्वत, सागर, ग्राम-नगर, सूर्य-चन्द्र, संध्या - प्रभात, युद्ध, विवाह, सहयोग-वियोग सबका वर्णन विस्तार से मिलता है । कवि का मन युद्ध, विवाह, पनघट, षट- ऋतु, नख-शिख, शृंगार आदि के वर्णन में खूब रमा है । युद्धों का वर्णन तो अद्वितीय है ।

घटनाओं और चरित्रों का संगुम्फन अच्छा हुआ है । यह प्रबंध -पटुता है । विस्तार के कारण प्रबंधात्मकता में कहीं -कहीं शिथिलता होने पर भी वह भ्रामक या अरुचिकर नहीं हैं ।

2.6.1 सफल महाकाव्य :

डा. माताप्रसाद गुप्त का कहना है कि'रासो' सभी दृष्टियों से एक 'बहुत सफल महाकाव्य है'। आकार -प्रकार में ही नहीं, वह उससे भी अधिक इसलिए महाकाव्य है कि वह हमारे राष्ट्रीय आदर्शों का सच्चा प्रतिनिधि है । उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय आदर्शों की जितनी सच्ची और सफल अभिव्यक्ति हुई है, कम ही ग्रंथों से हुई होगी । शुद्ध काव्य की दृष्टि से भी वह एक उत्कृष्ट रचना है ।'' (हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड) संपादक - धीरेंद्र वर्मा, भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग, 1959 ई.-पृ. 121)

2.6.2 काव्य सौष्ठव :

वस्तु -वर्णन, चरित्र-चित्रण, भाव-व्यंजना एवं शैली की दृष्टि से भी रासो एक उच्च कोटि की रचना है । कवि के वह कठिन समय में प्रत्युत्पन्न मति है । संकेत में पृथवीराज को ताम्बूलवाहक की भूमिका अदा करने की चतुर योजना बना सकता है । कयमास वध जैसे अनुचित कार्य के लिए सावधान करता है । कामकेलि में आसक्त राजा को सचेत करता है ।

जब पृथवीराज गोरी के द्वारा बन्दी बनाया जाता है तब वह सभी -वीरों को तलवार उठाने को आह्वान करता है । काश कवि की चेतावनी मानकर उस समय के क्षत्रिय वीर एकजुट होकर शत्रु का मुकाबला करते । तब राष्ट्र की सुरक्षा को खतरा पैदा नहीं होता ।

प्रसंगानुसार विभिन्न विषयों - प्रकृति, नगर, बाजार, राजसभा, रंगमहल, रण क्षेत्र, युद्धकौशल, चरित्र-चित्रण (खासकर पृथवीराज , उनकी पत्नियों, और कविचन्द की चारित्रिक विशेषताओं)आदि का विस्तार से तथा आलंकारिक शैली में वर्णन किया है । यह किसी भी महाकाव्य के अनुरूप है । पृथवीराज तो राजपूती गुणों-अवगुणों का अवतार है । उसमें आत्माभिमान, वीरत्व, देशप्रेम, अहंभाव, उदारता, विलासिता, निभर्यता आदि गुणों का सम्यक वर्णन हुआ है । कवि चन्द का व्यक्तित्व भी काफी सशक्त है । वह फक्कड़, ओजस्वी, स्पष्टवक्ता, सत् परामर्शदाता, अनुरक्त, भंगीर, दूरदर्शी, कल्पनाशील व्यक्ति है । 'जहि प्रिय बन संगली फिरइ, तिहि प्रियजन कहा काज !'' 'रासो' की नायिकाएँ तो सुन्दरी, गुणवती, पतिव्रता, प्रेममयी, अनुभव और संवेदनशील उदार और देशप्रेमी हैं । वे भारतीय नारी के उच्च आदर्शों की मूत्तियाँ हैं । नारी जीवन को बड़ी बारी की से तथा कुशलतापूर्वक अंकित करने वाला यह महान कवि है । प्रकृति को उसने जीवन के साथ ओतप्रोत करके देखा है । ऐसी काव्यप्रतिभा दुर्लभ ही है ।

संयोगिता का हरण, परिणय, केलिविलास के वर्णन प्रसंगों में कवि के शृंगार-वर्णन का चरमोत्कर्ष है । सौन्दर्य, प्रेम और विरह की एक-एक मार्मिक झांकी सहृदय को मुग्ध कर देती है । संयोगिता का सहज और उद्दाम सौन्दर्य, यौवन की चमक, अनुरागपूर्ण चेष्टाएँ, कोमल भावनाएँ एक आदर्श नारी के अनुरूप हैं । जहाँ वह अपने प्रेम के लिए सबकुछ बलिदान में देने को प्रस्तुत है, अगर पृथवीराज पतिरूप में न मिला तो गंगा में अपने को विसर्जित करने की दृढ़ता रखती है -

'कइ बहि गंगहिं संचरउं कइ पानि गहउं पृथवीराज ।' उसका प्रणय व्रत है कि सदा दिल्लीश्वर ही उसके प्राणेश्वर रहेंगे । परंतु जब सुनती है कि उसका आराध्य युद्ध से विमुख होकर विलास के आकर्षण में आ रहा है , तो एक सच्ची वीरांगना की भाँति कहती है - जिस प्रिय की ओर लोग उंगली उठावे उससे क्या संबंध ?

2.6.3 काव्योत्कर्ष का परिचय :

मिसाल के तौर पर गोरी के अंतिम आक्रमण के पूर्व के षट् ऋतु -वर्णन प्रसंग के छन्द भावार्थ के साथ नीचे दिए जा रहे हैं -

श्यामांगे कल धूत नूत शिखरे मधुरेहि मधुवेष्टिता ।
वाता सीत सुगंध मंद शिरसा आलोल साचेष्टिता ॥
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनो ।
रसे रत्त बसंत मच सरसा संजोजि भोगायते ॥

(वृक्ष हरे नव पल्लवों के कारण) श्यामांग और रंग-बिरंगे पुष्पों के कारण नूतन कलधूत - चांदी सोने के (जैसे) शिखरों वाले और मधुर मधु से आवेष्टित (हो रहे) हैं । शीतल, सुगधित मंत्र और सरस बात अपनी चेष्टाओं में विशेष लोल हो रही है । कंठी (कोयल) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों(कलियों) में कामोद्दीपन हो रहा है । रत्तेरत्त - रक्त वर्ण के (रंगीन) और मत्त बसंत का सहयोग प्राप्त करके अनुरक्त होकर पृथवीराज संयोगिता का भोग कर रहा है ।

दीहा दिग्ध सुदग्ग कोप अनिला आवर्त्त मित्ताकरं ।
रेन सेन दिसन थान मलिना गोमग्ग आडम्बरम् ॥
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।
मलया चंदन चंद मंद किरणे ग्रीष्मे च आषेचनं ॥

दिन दीर्घ होने लगा है, गर्मी का प्रकोप हो गया है, अनिल से मित्र (सूर्य) के करों के कारण आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं । रेणु की सेनाओं से दिशाएँ और स्थान मलिन हो रहे हैं, (यथा) गोमार्ग (की धूल) के आडंबर से हों । जहाँ जो भी नीर था, वह अपीन(क्षीण) हो गया हूँ । और तप (गर्मी) का तन (शरीर) तरुण हो गया है । मलय(समीर), चन्दन और चन्द्रमा की किरणें ही ग्रीष्म में मुरझाते हुए प्राणों का सिंचन करते हैं ।

आले बद् दल मत्त दिसया दामिन्य दामायते ।
दादूर दरमोर सोर ससिसा पप्पीह चीहायते ॥।
सिंगराय वसुंधरा सुललिता ललिता समुद्रायते ।
जामिन्या सम वासरे विसरिता प्रावृट् सुपश्यामिते ॥

आर्द्र बादल मत्त होकर दिशाओं में (फैल गए) हैं । दामिनी -दमक रही है । दादुरों तथा मयूरों के शोर के साथ पपीहा चीख रहा है । वसुंधरा ने सुललित शृंगार कर लिया है । सरिता उमड़ कर समुद्र

बन रही है । बासर (दिन) भी प्रावृट (वर्षा) में यामिनी (रात्रि) समान (अंधकारपूर्ण) होते हुए दिखाई दे रही है ।

2.7. शशिव्रता विवाह :

2.7.1 कथानक :

'पृथ्वीराज रासो' एक चरित -काव्य है, जिसका नायक इतिहास प्रसिद्ध वीर अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज चौहान है । तत्कालीन भारतीय जीवन में क्षत्रिय वीरों के अनुरूप पृथ्वीराज ने अपने जीवन में अनेक युद्धों में भाग लिया और अनेक सुन्दरियों से विवाह किया था । चन्द वरदाई ने उनके जीवन - चरित के कुछ अंशों का वर्णन किया है । शशिव्रता विवाह खंड में पृथ्वीराज का देवगिरि की राजकुमारी शशिव्रता से विवाह करने का प्रसंग वर्णित है । यह एक प्रासंगिक कथा है, पृथ्वीराज के जीवन से जुड़ी है । कथाविकास की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र खंडकाव्य जैसा है ।

कथानक का प्रारंभ शुक-शुकी संवाद से होता है । शुकी पूछती है कि दिल्लीश्वर के गन्धर्व विवाह की कहानी सुनाओ । शुकी शुरू से शशिव्रता के पूर्वजन्म का वृत्तांत भी जानना चाहती है और इस जन्म में कैसे उसका विवाह पृथ्वीराज से हुआ । शुक बताता है कि शशिव्रता चित्रलेखा नामक अप्सरा थी, जो शापवश राज भानकी भतीजी बन कर जन्म ले चुकी है । यद्यपि उसकी सगाई कमधज वीरचन्द के साथ हुई है, वह पृथ्वीराज के द्वारा अपहृत होकर उसकी पत्नी बनती है ।

शुक फिर कहता है कि देवगिरि का एक नट दिल्ली दरबार में जाता है । पृथ्वीराज के पूछने पर वह बताता है कि राजकुमारी शशिव्रता की सगाई कमधज राजा के यहाँ निश्चित हुई है । लेकिन वह मेनका जैसी सुन्दरी को वह वर पसन्द नहीं है । शशिव्रता के रूप का वर्णन सुनकर पृथ्वीराज उस पर मोहित हो गए और उसे प्राप्त करने के उपाय पूछने लगे । नट ने उन्हें पूरी मदद करने का आश्वासन दिया । पृथ्वीराज ने शिवजी की पूजा करके वरदान प्राप्त किया । उन्होंने वर्षा और शरद ऋतु को बड़ी कामपीड़ा में बिताई और फिर देवगिरि जाने का निश्चय किया ।

उधर शशिव्रता की सगाई का समाचार पाकर एक गंधर्व स्वर्ण हंस का रूप धारण कर अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई शशिव्रता के पास पहुँचा शशिव्रता उसे देख उत्सुक होकर उससे वृत्तान्त पूछती है । वह बताता है कि मैं मति प्रधान एक गंधर्व हूँ । तुम्हारी सगाई वीरचन्द से तय हुई है, पर उसकी आयु सिर्फ एक साल है । मुझे इंद्र ने तुम्हारे पास भेजा है, क्योंकि तुम उसकी एक अप्सरा हो । वे और मैं तुम्हारा हित चाहते हैं । मैं त्रिलोक में सर्वत्र जाने की शक्ति रखता हूँ ।

वह कहता है -

तेम रहे वर बरष इक्क महिं ।

हय गय अनन्त जुझ्झि है समंतहिं ॥

तिहि चार करि तुमहि आयो ।

करि करुना यह इन्द्र पठायो ॥

यह सुनकर शशिव्रता वीरचन्द से विमुख हो गई और अपने लिए योग्य वर का पता पूछने लगी । हंस ने शशिव्रता के आगे दिल्लीश्वर पृथ्वीराज की प्रशस्ति सुनाई । तब शशिव्रता उसे उन्हें बुला लाने का आग्रह करती है । छह महीने तक प्रतीक्षा करेगी, नहीं हुआ तो प्राण त्याग देगी -

वहाँ तुम पिता कृपा करि जाउ । दिल्लीवै अनुराग उपाउ ॥

मास षटह हौं वृत्तह मंडों । तथयुना आवै तो तनु छंडो ॥

तब हंस दूत बनकर पृथ्वीराज के पास जा पहुँचा । उसके स्वर्ण शरीर को देख राजा ने उसे स्नेह के साथ पास बुलाया और कुशल समाचार पूछा । उसने बता दिया - मैं शशिव्रता का दूत हूँ । वह सुन्दरी तुम्हारे लिए व्रत करके बैठी है । उसने शशिव्रता का सौन्दर्य -वर्णन किया । बताया कि उसके शरीर से शैशवावस्था जा चुकी है और किशोरावस्था प्रवेश कर चुकी है । वह सुमेरु के समान सुन्दर है । सूर्य तथा चंद्र के उदय और अस्त के मध्य वह शृंगार के सुमेरु जैसी शोभायमान हो रही है । वह अभी अज्ञात यौवना है -

ससिर अंत आवत वसंत । बालह सैसव जम ॥

अलिन पंष कोकिल सुकंठ । सजि गुंड मिलत भ्रम ॥

मरु मारत मुरि चले । मुरे मुरि बअस प्रमानं ।

तुछ कोंपर सिस पुट्टि । आनि किस्सो रंगानं ॥

लीनी न अंमिनक स्याम तन । मधुर मधुर धुनि करिय ॥

जानो न बयन आवन वसन्त । अंज्ञाता जोवन अरिय ॥

पत्त पुरातन झरिग । पत्त अंकुरिअ अट्ठ तुछ ॥

ज्यौं सैसव उत्तरिय । चढ़िय सैसव किसोर कुछ ॥

रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन पृथ्वीराज के मन में शशिव्रता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है । वह उसे पाना चाहता है । वह हंस से उसके बारे में अधिक जानना चाहता है । हंस भी उसके पूर्व जन्म का वृत्तांत बताता है । सगाई की बात बताता है । शशिव्रता उसके प्रति आकृष्ट होकर रोज शिव पूजन करती है । हंस बताता है कि पहले ही शशिव्रता के मन में तुम्हारे प्रति प्रेमांकुर उत्पन्न हो चुका है । वह राजा

भान के छोटे भाई पुंज की पुत्री है । वह कामदेव के सधे बाण के समान है । वह राजा के मंत्री की बहिन चन्द्रिका से तुम्हारा गुणगान सुन चुकी है और तुम पर अनुरक्त है । हंस तब शशिव्रता के नखशिख - सौन्दर्य का वर्णन करता है ।

पीनो रूपीन उरजा, सब शशि वदना, पदम -पत्रपताक्षी ।
व्यंवोष्ठी तुंग नासा, गज गति जमना, दसना वृत्तनाभी ॥
संस्निग्धा चारु केशी, मृदु प्रथु जघना, वाम मध्या सु देसी ।
हेमांगी कांति हेला, वर रुचि दसना, काम बाना कटाक्षी ॥

हंस पृथ्वीराज को आश्वस्त करता है कि शिव के वरदान से वह आपको अवश्य प्राप्त होगी । आप शशिव्रता को देवचन्द के हाथों से बचाकर ले आइए । हंस यह प्रेम संदेश देकर उड़ गया ।

तब पृथवीराज अपने सैन्य सामंतों के साथ देवगिरि के लिए कूच कर देता है । उधर वीरचन्द एक लाख दस हजार सेना लेकर शशिव्रता के विवाह के लिए देवगिरि आता है । यह सुनकर जब शशिव्रता आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है , तभी हंस पहुँचकर उसे पृथ्वीराज के प्रेम और आगमन की सूचना उसे देता है ।

पृथ्वीराज के आगमन की बात सुन शशिव्रता मातापिता से आज्ञा लेकर शिव पूजन के लिए हरसिद्धि नाम के स्थान में चली जाती है । उसने सोलह शृंगार किया । इस अवसर पर कवि उसके सौन्दर्य और आभूषणों, मनोदशा का विस्तार से वर्णन करता है ।

शशिव्रता का पृथ्वीराज के प्रति आकृष्ट हुई जानकर राजा भान पृथ्वीराज के पास दूत भेजता है । पृथ्वीराज अपने चुने हुए सात हजार वीरों को कापालिक भेष में मंदिर के अहाते में पहुँचा देता है । पहले से वीरचन्द अपनी सेना द्वारा मंदिर को घेर रखा है । पृथ्वीराज भी रौद्र रूप धारण कर देवालय के भीतर प्रवेश करता है । वह शशिव्रता को अपने हाथों से पकड़ लेता है । कवि कहता है मानो मत्त गजराज ने कंचनलता को पकड़ लिया है -

''चौहान हथ्थ बाला गहिय । सो ओपभ कवि चन्द कहि ।
मानों कि लता कंचन लहरि । मत्त वीर गजराज नहि ॥''
'' जहि शशिव्रता मरिंद । सिढि लंघत वहि थोरी ।
काम लता कल्हरी । प्रेम मारु न झकझोरी ॥

फिर क्या था । भीषण युद्ध छिड़ गया । पृथ्वीराज सेनापति काल्ह को लड़ई का हुक्म देता है । वह बाज की तरह शत्रु पर टूट पड़ता है । भयानक युद्ध होता है । तब शशिव्रता के नेत्रों में शृंगार और भय, वीर सामंतों में वीर रस, पृथ्वीराज में रौद्र रस और अप्सराओं में हास्य रस तथा देवताओं में

भयानक रस देखा जाता है -

भान कुँवरि शशिवृत्ति । नैन शृंगार सुराजै ।
वीर रूप सामंत । रुद्र पृथ्वीराज विराजै ॥
चन्द अद्‌भुत जानि । भए कातर करुनामय ।
बीभछ अरिन समूह । साँती उप्पनौ मरन भय ॥
उपज्यौ हास अपछरि अमर । भो भयान भावी विगति ॥
कूरंभराय पृथिराज वर । लरन लोह चिते तरनि ॥

लड़ाई में एक नाई का युद्धकौशल और वीरगति की प्राप्ति देखकर वीरचन्द भी मरने का निश्चय करता है । रात को युद्ध का विश्राम होता है । सामंत लोग पृथ्वीराज को शशिव्रता को लेकर दिल्ली चले जाने का आग्रह करते हैं । लेकिन पृथवीराज मना करता है । सुबह फिर युद्ध शुरू होता है । युद्ध की भीषणता देखकर शशिव्रता काँप उठती है । वह सतृष्ण नयनों से पृथ्वीराज कीओर देखती है । शशिव्रता का आशय समझ कर पृथ्वीराज उसके साथ दिल्ली चल देता है । यह खबर पाकर वीरचन्द उसे घेर लेता है । उसकी पराजय और मृत्यु होती है । दिल्ली में 'तोरणोत्सव' मनाया जाता है । पृथ्वीराज शशिव्रता के साथ अपनी राजधानी राजप्रासाद में प्रवेश करता है । इस प्रकार शशिव्रता पर पूरी तरह से केन्द्रित यह विवाह प्रसंग समाप्त होता है ।

इसलिए इस खंड का नामकरण सार्थक है ।

2.7.2 नारी का सौन्दर्य वर्णन :

राजा -रजवाड़ों के वंशों में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी । अनेक कन्याओं का शौर्य और पराक्रम पदर्शन करके हरण किया जाता था । वीरत्व के एक अंग के रूप में विवाह प्रलित था । 'पृथवीराज रासो' में अनेक विवाह -प्रसंगों का वर्णन मिलता है । उनमें इंछिनी, पद्मावती, शशिव्रता, और संयोगिता के विवाह -वर्णन में कवि का काव्य-कौशल फूट पड़ा है । बड़ी बात यह है कि इनमें पुनरावृत्ति का दोष नहीं है । प्रत्येक वर्णन एक-दूसरे से भिन्न स्वाद का है ।

इंछिनी का विवाह पूरी तरह हिन्दू रीति से हुआ है । ब्राह्मण लग्न लेकर आता है । बारात धूमधाम से जाती है । फिर अगवानी, तोरण, कलश, द्वाराचार, जनवासा, मण्डप, कन्यादान, गठबंधन, भाँवरें, गारी, शाखोच्चार, ज्योनार, दान-दहेज, विदाई सबका ब्योरेवार वर्णन किया गया है । शेष तीन विवाहों में पूर्वाराग, तुल्यानुराग, गुणकथन-श्रवण, अभियान, युद्ध और हरण आदि का वर्णन हुआ है । पद्मावत, इंछिनी और शशिव्रता के वय:संधि का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है । नारी के सौन्दर्य वर्णन

करने में चन्द अत्यंत कुशल हैं ।

यहाँ तुलनात्मक ढंग से सुदरियों के रूपवर्णन की चर्चा करेंगे । 'इंछिनी का सौन्दर्य -वर्णन निम्नलिखित है' -

वाले तन्वय मुग्ध मध्यत इमं स्वपनाय वैसंधयं ।
मुग्धे मध्यम स्वांगम वामति इमं मध्यान्ह छाया पगं ॥
बालपन तन मध्य जीवन इमं सरसी अबग्गी जल ।
अंग मद्धि सुनीरजे मल ससी सुम्भै सुसैसव हमं ॥

बाह्य रूपवर्णन के साथ सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता को एक साथ समेटा गया है । इंछिनी के मन की अवस्था ऐसी है -

हलहलै लता कछु मंद बाय । नववधू केलि भय कंप पाय ।
उपमां उर कहीय तांग । जुब्बन तरंग अंगि अंगि काम ॥

सद:स्नाता इंछिनी का सौन्दर्य इन शब्दों में बांधा गया है -

करि मंजन अंगोछि तन, धूप वासि बहु रंग ।
मनो देह जनु नेह फुलि, हेम मौजजनु जंग ॥

इंछिनी वधू है । वह मंगलमयी मूर्ति है -

जरकस घुघर घमंड जानु रवि किन्न कदल ग्रह ।
कुसंग लेके निसार, रंग छबि छड़ हंड हर ॥
पीत कंचुकी संचि षंडि कस अंग उपट्टिय ।
कंगन कर वर बरत गंग हरदीप उपट्टिय ॥
आलोल मौन गति बचन बहु, सषिन सोम मंडिय तनह ।
फुल्ली सु सांझ कवि चंद कहि, मनहु बीजु थरकी घन ह ॥

इंछिनी में पूर्वराग नहीं है । शशिव्रता में है । इसलिए शशिव्रता के रूपगुण के वर्णन द्वारा पूर्वराग उत्पन्न किया गया है । प्रथम साक्षात्कार के समय शशिव्रता की मनोदशा का सुन्दर वर्णन इन शब्दों में किया है -

कर्न प्रयंत कटाछ सुरंग बिराजही ।
कछु पुच्छन को जाहि पै पुच्छत लाजही ॥

तैन सैन के बात जे स्रवननिसों कहैं ।

काम किधौं प्रथिराज मंदि करि नाल है ॥

कानों और नेत्रों का वार्तालाप सर्वथा नवीन कल्पना है । 'पुच्छत लाजहीं' में भाव-सौन्दर्य मनोरम हो उठा है ।

संयोगिता पूर्ण युवती है । गंगा तट पर प्रथम दर्शन हुआ । मनोरम प्रकृति पृष्ठभूमि में खड़ी है । संयोगिता का शारीरिक सौन्दर्य देख पृथ्वीराज चकित हो जाता है । कवि प्राकृतिक उपमानों से नारी के सौन्दर्य का वर्णन करते नहीं थकता -

कुंजर उप्पर सिंघ सिंघ उप्पर दो पब्बय ।

पब्बय उप्पर भृंग भृंग उप्पर ससि सुम्भय ।

ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मृग दिट्ठी ।

मृग उप्पर कोदंड संघ कन्द्रघ बइट्ठो ॥

अहि मयूर महि उप्पर ह हीर सरस हेमन जर्‌यौ ।

सुर भुवन छंडि कविचन्द कहि तिहि घोषै राजन पर्‌यौ ॥

संयोगिता का प्रसंग काव्य की प्रौढ़ता का प्रमाण है । इसे प्रामाणिक न मानने वाले संयोगिता का स्वाभाविक सौन्दर्य , प्रेम की पराकाष्ठा, शृंगार की मार्मिक चेष्टाएँ, कोमल भावनाओं की छटाएँ, सहृदयता, मनोवैज्ञानिकता और सरसता देखें । संयोगिता मृगों को यवांकुर खिला रही है । मानिनी के मिस इंदु भी उसे देखकर आनन्दित हो रहा था । शोभा को देखकर सखियाँ कहती हैं इस का पति तो कामदेव ही हो सकता है -

जब अंकुर करि पानि चरावति वच्छमृगु ।

मनु मानिनि मिस इन्दु आनन्दइ देखि दृगु ॥

सहि सहचरिनि चरत्त परसपर वित्तु किअ ।

सुभ सयोगि संजोग जानहु मनमथ्थ किअ ॥

संयोगिता केवल सजीव शृंगार रस नहीं है । वह भारतीय वीरांगना का आदर्श भी है ।

शशिव्रता - सौन्दर्य

शशिव्रता विवाह प्रसंग की नायिका शशिव्रता है । वह केन्द्रबिन्दु है जिसके चारों ओर कथा का तानाबाना बुना गया है ।

वह अति सुन्दरी है । पूर्वजन्म में वह चित्रलेखा नाम की अप्सरा थी, ऐसा कहा गया है । वह देवगिरि राजा भान के भाई पुंज की पुत्री है । हंस रूप धारण करके गंधर्व उसका पूर्ववृत्त बताता है । हंस से पृथ्वीराज के गुणगान सुनकर शशिव्रता उसको मन ही मन अपने पति के रूप में स्वीकार करती है । फिर वह उसे पाने के लिए गौरी और शिव की पूजा करती रहती है । अपने प्रण में वह दृढ़ है कि या तो पृथ्वीराज को पति रूप में प्राप्त करेगी या अपने प्राण त्याग देगी । पूर्वानुराग की यह दृढ़ता कम नायिकाओं में होती है । वह छह मास का समय लेती है ।

वहाँ तुम पिता कृपा करि जाउ । दिल्ली वै अनुराग उपाउ ॥

मास षटह हो वृत्तह मंडो । तथ्थु न आवै तो तन छंडो ।

इसके मुख से शशिव्रता की ऐसी प्रतिज्ञा की बात जानकर स्वाभाविक रूप से पृथ्वीराज भी उसके प्रति आसक्त हो जाता है ।

शशिव्रता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन कवि के शब्दों में -

राका अरु सूरज्ज बिच । उदै अस्त दुहु बेर ॥

बर शशिव्रता सोपाई । मनो शृंगार सुमैर ॥

शशिव्रता का मन भी प्रेम रस से पूर्ण है । उसकी उत्सुकता, अभिलाषा, प्रेम की व्याकुलता उसे एक आदर्श प्रेमिका का स्थान दिलाती है । सपत्नी भय, मुग्धा की लज्जा आदि उसके चरित्र की विशेषताएँ हैं ।

वय:संधि के समय शशिव्रता के शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं के अनेक सुन्दर चित्र कवि ने अपने कुशल शब्दों में प्रस्तुत किया है ।

शशिव्रता का मन कोमल है । वह युद्ध की भयानकता को सहन नहीं कर सकती । पृथ्वीराज उसकी इस भावना का आदर करके उसे लेकर आगे बढ़ जाते हैं । वीरचन्द उन्हें घेरता है । लड़ाई फिर होती है । पृथ्वीराज की विजय होती है । शशिव्रता विजय की निशानी बन जाती है ।

2.7.3 वीर और शृंगार रस का प्राधान्य :

शशिव्रता विवाह -खंड कवि चंद वरदाई की काव्यकला का उत्कृष्ट नमूना है । इसमें वीर और शृंगार रस की कुशल निष्पत्ति हुई है । वैसे तो एक छंद में कवि नव रसों की अनुभूति करा देता है । संपूर्ण प्रसंग में बाह्य वर्णन और भाव -व्यंजना का मणिकांचन संयोग हुआ है । शृंगार का ऐसा सांगोपांग और काव्यात्मक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है । 'पृथवीराज रासो' में वीर और शृंगार में शौर्य, प्रेम सौन्दर्य के अभिराम दृश्य एक साथ दिखाए गए हैं ।

शशिव्रता विवाह प्रसंग में सयोग शृंगार का मनोहारी वर्णन है । इसके अंतर्गत नायिका का रूप-सौन्दर्य, वय:संधि, साज-शृंगार, सद्य:स्नातारूप, आभूषण और नख-शिख वर्णन के साथ संबंधित मन:स्थितियों का अपूर्व वर्णन हुआ है ।

शशिव्रता वय:संधि को प्राप्त मुग्धा नायिका है । वह चित्रलेखा अप्सरा का मानवी अवतार है और अनुपम सुन्दरी है । कवि वय:संधि सुन्दर रूप दिखाता है -

वहसंधिरु बाल प्रमान ब्रनं । कहि श्रोटक उंद प्रमान सुनं ।
वय स्यांमरु शैशव अंकुरयं । अह अंत निसागम संकुरिय ॥
जल सैसव मुद्ध समान भयं । रबि बाल बहिक्रम अत्थमियं ।
वर सैसव जोबन संधि अती । सु मिलें जनु पित्तह बाल जती ॥

उभरता हुआ यौवन वसंतागम के रूप में वर्णित है । उसका मादक और स्निग्ध शब्द -चित्र कवि खींचता चलता है -

पत्त पुरातन झरिग । पत्त अंकुरिय उद्ध तुछ ॥
ज्यों सैसव उत्तरिय । चढ़िय वैसव किसोर कुछ ॥
शीतल मंद सुगंध । आइ रितिराज अचाननं ॥
रोमराइ अंग कुच नितंब । तुच्छ सरासनं ॥
बढ़ैं न सीत कटि छीन ह्वै लज्ज मांन ढंकति फिरै ॥
ढकै न पत्तं ढकै कहै । बन बसंत मंत जु करै ॥

शशिव्रता गौरी पूजन को जाने के लिए कैसे - कैसे साज -सिंगार करती है । कवि उसका रसार्द्र वर्णन करता चलता है । उसकी खुली केश राशि मानो स्वर्ण खंभसे उतरती सर्पिणियाँ हैं -

बाला बेनी छोरि करि । छुट्टै चिहर सुभाइ ।
कनक खंभ तें उत्तरी । उरग सुता दरसाइ ॥

शशिव्रता ने स्नान -मंजन किया । सुन्दर वस्त्र -आभूषणों से अपने शरीर को सजाया । घनसार की सुगंध, नेत्रों में अंजन । कवि इस साज-सिंगार का भरपूर वर्णन करता है -

भय मंडित मंजन बाल तनं । घनसार सुगंध सुबोरि मनं ।
नव लोइन अंजित मंजि चली । कि मानो कस कुंदन खंभ हली ।
सुभ वस्त्र सुअंग सुरंगन सी । सुहली मनु साषमदन्न कसी ॥
जरि जेहरी पाइ जराइ जरी । सजी भूषन नम्भ मनो उतरी ॥

इसके साथ उसका प्रेमविभोर मन का भी वर्णन है । वह गहनों को बेठिकाने पहनने लगती है । नैन तो कमान बन गए हैं । कटाक्ष सहज अनुभव है । हावभाव मनमोहक है -

करि मज्जन सज्जन सुक्रम । आभूषणन न समान ।
केहि काके केहि दिसि । सजससि नैन कमान ।
सजि ससि नैन कमान । केश बागुरि विस्तारिय ।
हावभाव कटाच्छ । ढुँकि षुट्टि दिय भारिय ।
बैठि नैन नृप मूल । पेम देषन गह सज्जन ।
मन मृग पिय कृत लाज । ताकि बंधन किय मज्जन ॥

फिर शशिव्रता का नख-शिख वर्णन है । सुन्दर, विस्तृत और सजीव वर्णन -

सुगंध केस पासयं । सुलग्गि मृत्त छंडियं ॥
मनो सनाग पुप्फ जानि । तीन पथि मंडित ॥
दुती कि नाग चंदनं । चढंत दुख पंमियं ॥
कनक्क काम कुंडिलं । हलंत तेज उम्भरे ॥

शशिव्रता विहग -शावक जैसी है । सखियों के बीच गौरी पूजन को जा रही है । कपोलों से पति विषयक रति टपक रही है । कालिन्दी जैसे केशपाश के बीच माँग है, जो कामदेव को लुभाती है । कुच, रोमावली , पिंडलिया ँ, नितंब, नख, ऐडियाँ इत्यादि सौन्दर्य की झाँकियाँ हैं -

चली अली घनं बनं । सुमंत सथ्थ सघनं ॥
विहग भंगयो पुरं । चलंत सोम नोपरं ॥
अलीन जुथ्थ आवंर । मनो विहंग सावरं ॥
चुवंत पत्त रत्त जा । उवंत जानि अंबुजा ॥
कलिंद सोम केसये । अनंग अंग लोभयं ॥
उठत कुंभ कुंचयं । उपंम कब्बि सुच्चयं ॥
मनो जरंत बाल की । धरी सु आनि लालकी ॥
सुमंत रोम राजयं । प्रपील पंति छाजयं ॥
मनोज कूप नासिका । चलंत लोभ आलिका ॥
सुरंभ सोभ पिंडुरी । षरादि काम षिडुंरी ॥

नितंब तुंग सोभये । अनंग अंग लोभये ॥
मनो कि रथ्थ रंभके । सुरम्भ चक्क संभके ॥
नषादि आदि अच्छनं । उपम्म कबि टेरियं ॥
मनो कि रत्त रत्तजा । चिकत पत्त अंबुजा ॥

शशिव्रता विवाह प्रसंग में संयोग शृंगार के मनोरम चित्र मिलते हैं । प्रेम तुल्यानुराग से आरंभ होकर चरम भावात्मक और आनन्ददायक होता है । पहले नट के मुख से फिर हंस से शशिव्रता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर पृथ्वीराज के हृदय में अनुराग पैदा होता है । वह रात भर बेचैन रहता है । दूसरे दिन ही सैन्य सामंत लेकर देवगिरि के लिए प्रस्थान करता है । उसमें प्रेम की व्याकुलता और कामोत्तेजना दोनों है । इसीसे वीर की भाँति कार्य करने को वह प्रेरित होता है । उधर हंस से पृथ्वीराज के शौर्य और सुगुण सुनकर शशिव्रता भी प्रेमाकुल हो जाती है । वह पृथ्वीराज को पति रूप में पाने के लिए गौरी -व्रत आदि करने लगती है । पूर्वराग उत्पन्न होने पर वह बावली हो जाती है । और संकल्प करती है कि या तो छह मास में पृथ्वीराज से विवाह करेगी या प्राण त्याग देगी । वह कहती है -

मांस षटह हो वृहत्त मंजै । तथ्यु ना आवे तो तन छंजैं ।

अतएव यहाँ तुल्यानुराग की स्थिति है । दोनों ओर प्रेम पलता है । दीपक जलता है, तो पतंग भी जलता है । शशिव्रता अप्सरा का अवतार है तो पृथ्वीराज कामदेव के समान है । दोनों रूप और गुणों में बराबर हैं । दोनों में समान प्रेम की पीड़ा है ।

पृथ्वीराज को देखते ही शशिव्रता के नेत्र और कर्ण में द्वंद्व आरंभ होता है , जो उसके प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक है । नायिका के मन की अवस्था क्षण-क्षण में बदलकर व्याकुलता बताती है -

यों करंत दुत्ति दियो । कथे श्रवन सुनि मंत ।
जाको ते पतिवृत्त लिय । सो आयो अलि कंत ॥
श्रवन नयन मेल कै । भय चंचल मन चित्त ।
श्रोतानं दिष्टानं अरु । मिलि पुच्छै दोई मित्त ॥

आगे प्रेम की धारा शतधा होकर बहती है -

कर्न प्रयंत कटाछ सुरंग विराजहीं ।
कछु पुच्छन को जाहिं पै पुच्छत लाजहीं ॥
नैन सैन में बात जु श्रवनन सों कहै ।
काम किधौं प्रिथिराज भेद करि ना लहै ॥

नैन श्रवन्नान पूछई । तुम जानो बहु कंत ।

मेरे जिय अंदेश है । कही न मैं पियजंत ॥

प्रेमिक और प्रेमिका का प्रथम दर्शन सर्वथा भावात्मक क्षण होता है । चन्द का यह वर्णन अत्यंत स्निग्ध, रसमय, मार्मिक है । स्वाभाविक और गर्यादित है । शशिव्रता जो काम लता 'कल्हरी' है तो 'प्रेम मारुत' द्वारा झकझोर डाली गई है । ऐसे में 'मत्तवीर गजराज' द्वारा 'मानो कि लता कंचन लहरी' पकड़ी गई । पृथ्वीराज ने शशिव्रता का हरण कर लिया । फिर क्या था । भावों, अनुभावों, हावभाव, कामचेष्टाओं की लड़ी उमड़ चली -

दिट्ठ दिट्ठ लग्गी समूह । उतकंठ सु भग्गिय ॥

निष लज्जनिय नयन । भयन माया रस पग्गिय ॥

छल बल कल चहुंआन । बाल कुअँरप्पन भंजे ॥

दोष त्रीय मिट्टयौ । उभय भरी मन रंजे ॥

चोहान हाथ बाला गहिय । सो ओपम चन्द कहि ।

मानों कि लता कंचन लहिर । मत्त वीर गजराज गहि ॥

गहि शशिव्रत नरिंद । सिढि लाँघत ढहि थोरी ।

काम लता कल्हरी । प्रेम मारुत झकझोरी ॥

ऐसे मार्मिक स्थलों की पहचान कवि को है । उसकी भाषा घटनाओं का चित्रात्मक वर्णन करने में समर्थ है । उसकी उपमा आदि अलंकार मौलिक और रसमय है । उसमें अश्लीलता नहीं, सहृदय के मर्म को आसानी से स्पर्श करने की क्षमता है ।

2.7.4 चरित्र-चित्रण :

महाकवि चन्द वरदाई ने अपने महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में तत्कालीन प्रख्यात हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन चरित को अपनी विषय -वस्तु चुना है । ऐतिहासिक पात्र होने के कारण उसकी चारित्रिक विशेषताएँ इतिहास ग्रंथों के माध्यम से पाठकों को कमोवेश मालूम ही हैं । फिर भी कवि अपनी काव्य-कुशलता का उपयोग करके उसके चरित्र को अधिक उजागर करने में सफल हुआ है ।

राजपूत होने के कारण पृथ्वीराज का शरीर सुन्दर और बलिष्ठ है । वह इतना सुन्दर है कि उसे कामदेव का अवतार कहा गया है । इस उपमा से आसानी से पृथ्वीराज की सुन्दरता, सौम्यता और

ओजस्वी व्यक्तित्व का संकेत मिल जाता है ।

पृथ्वीराज का शौर्य, तेज, वीरत्व, साहस, पराक्रम, दृढ़ता, निर्भीकता, उदारता आदि गुण उच्च क्षत्रिय की जाति के अनुरूप हैं । उसके शौर्य का वर्णन हंस दूत इन शब्दों में करता है ।

सत सामंत सूर बलकारी । तिन सम युद्ध सु देव विचारी ॥
जिन गहिबो सरबार गजन्नवे । हय गय मंडि छंडि फुविहियवै ॥
गुज्जरवै चालुक्य भीमतर । वे दिन राति डरै जंगलघर ॥

देवगिरि प्रयाण करते समय कवि पृथ्वीराज के वीरवेश का वर्णन कैसे भूल सकता है ?

चढ्यौ बाज राजं पृथ्वीराज राज । तवै पष्षरयौ बाज सकत्ति साजं ।
तज बर बाल सुरंग सुभेस । चल्यो प्रथिराज सु दष्षिन देस ॥

स्वभाविक है कि पृथ्वीराज का रण कौशल भी अप्रतिम है । वह प्रतिभट का सामना करना जानता है । सैन्य संचालन में पटु है । युद्ध अभियान आदि में गोपनीयता बरतता है, जो कुशल राजनीतिज्ञ का लक्षण है । वह कापालिकों का वेश धारण कर अपने सामंतों के साथ मंदिर में प्रवेश करता है, अतएव वीरचन्द को उसके अगमन का समाचार सही ढंग से नहीं मिलता । लेकिन सम्मुख रण में वह अपने पराक्रम से शत्रु को पराजित करता है, वीरचन्द का वध करता है । युद्ध में वह खुद भीम रूप धारण करता है । सामंतों के कहने से वह रण छोड़ कर दिल्ली जाना नहीं चाहता । वह युद्ध से डरता नहीं । शहाबुद्दीन को भी वह पराजित करता है । परंतु विश्वासघातकों के कारण पकड़ लिया जाता है ।

पृथ्वीराज सर्वदा अपने क्षात्र-धर्म और राजोचित कर्त्तव्य निर्वाह करता है । वह अपने सैन्य - सामंत को कभी अकेला नहीं छोड़ता । शशिव्रता युद्ध के भय से आतंकित हो उठती है, तो वह दिल्ली की ओर प्रस्थान करता है । लेकिन वीरचन्द उसे आगे रोकता है । तब पृथ्वीराज स्वय युद्ध में उसे पराजित करता है । कवि राजा के पराक्रम का वर्णन करके कहता है कि वह कभी भी कहीं भी शत्रु को पराजित कर सकता है । वह युद्ध जीतकर किसी को दंड देता है, किसी को क्षमा करता है । कवि कहता है -

भई जीति चहुआँन । अरिय भजे अभंग भर ॥
जय जय सूर बषान । दषै नंषै सुमन्न बर ॥
लै शशिवृता राज । अप्प दिल्ली संपत्तौ ॥
अरि अवनि कोन मंडे मनहु । षग्ग दाम अरि षंडइय ॥
कवि चन्द भेद दारुन कपटि । इक अडंड कारि डंडइय ॥

पृथ्वीराज के चरित्र का दूसरा पक्ष है शृंगार । क्षत्रियों की परंपरा में कन्याहरण वीरता और प्रतिष्ठा के साथ जुड़ा था । बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी । पृथ्वीराज ने अनेक विवाह किए । प्रस्तुत प्रसंग शशिव्रता से विवाह करने का है ।

पृथ्वीराज शांति के समय नवविवाहिता पत्नी के साथ विलास में व्यस्त रहते थे । कामोपभोग उनके चरित्र का एक विशिष्ट लक्षण है । लेकिन एक बात ध्यान देने की । पृथ्वीराज ने जिन कन्याओं का हरण किया, वे सब पूर्वानुराग के कारण था । कन्या के प्रेमभाव को किसी दूत आदि के माध्यम से जानकर पृथ्वीराज भी प्रेम मग्न हो जाते थे । यह प्रेम उन्हें पुरुषार्थ द्वारा कन्या को प्राप्त करने का कारण बनता था । वे जान की बाजी लगाकर अपनी प्रेमिका को युद्ध में जीत कर ले आते थे ।

अतएव पृथ्वीराज को कामी नहीं प्रेमी कहना अधिक न्यायोचित होगा । प्रेमभाव की सारी कोमल भावनाओं की अनुभूति उनको थी । यह अवश्य है कि संयोगिता के रूप -सौन्दर्य से वे इतने अभिभूत हो गए थे कि कवि चन्द को उन्हें सतर्क करना पड़ा कि इधर तो गोरी का आक्रमण होने लगा सावधान हो जाते हैं और राजकाज तथा युद्ध की तैयारी करने लग जाते हैं । है और तुम गोरी के मोहपाश में बंधे हो । सावधान हो जाओ । अपना कर्त्तव्य करो । तब पृथ्वीराज सावधान हो जाते हैं और राजकाज तथा युद्ध की तैयारी करने लग जाते हैं ।

2.7.5 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

'पृथ्वीराज सारो' की अनेक रूपता ही उसकी अप्रामाणिकता का मुख्य कारण है । ग्रंथ में वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्धमागधी शौरसेनी, पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, पिंगल, डिंगल, देशज, के साथ तुर्की-अरबी, फारसी के शब्द भी मिलते हैं । अतएव इसकी भाषा खिचड़ी बन गई है । रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं -

''भाषा की कसौटी पर यदि ग्रंथ को कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिलकुल बेठिकाने की है । उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है । दोहों और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छन्दों में तो कहीं -कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे किसीने संस्कृत प्राकृत की नकल की हो । कहीं -कहीं तो भाषा आधुनिक सांचे में ढली हुई सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूप में मिलती हैं । पर साथ ही कहीं -कहीं भाषा अपने असली साहित्यिक रूपों में पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ-साथ शब्द के रूपों और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं । इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रंथ न तो भाषा के इतिहास के और

न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है ।'' इसके बावजूद विद्वानों का एक वर्ग इसकी मूल भाषा को अपभ्रंश मानता है । इसमें मुनि जिन विजय, मथुराप्रसाद दीक्षित, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुनीति कुमार चटर्जी और दशरथ शर्मा आदि शामिल हैं । दूसरा वर्ग इसकी भाषा को डिंगल या पुरानी राजस्थानी मानते हैं । इस मत के पोषकों में मोतीलाल मेनारिया, रामकुमार वर्मा आदि हैं । तीसरा वर्ग इसकी भाषा पिंगल या ब्रजभाषा मानता है । इसमें एफ.एस. ग्राउज, जार्ज, ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा, नरोत्तम स्वामी, रामचन्द्र शुक्ल आदि मुख्य हैं । नामवर सिंह और उदयनारायण तिवारी भी इसकी भाषा को ब्रज ही मानते हैं ।

रामकुमार वर्मा कहते हैं कि एक ही समय में भाषिक विविधता जटिलता पैदा करती है । एक ही छन्द में शब्दों की विविध रूपावली का प्रयोग है । एक ही शब्द के अनेक रूप मिलते हैं ।

जैसे - 1. बात - बात, बत्त, वत्त, बत

2. सैल - सल सयल, सइल, सेलह

3. मनुष्य - मनुष्य, मनुष, मानुष्य, मानष, मनष

4. कार्य - कारज, काज, कजकज

5. स्नाह - अस्नान, सनान, न्हान

अरबी-फारसी के आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं -

कागज - कागद- पत्र के अर्थ में प्रयुक्त हैं ।

'रासो' की सभी प्रतियों में ये दोष समान रूप से मिलते हैं । अतएव यह संभव है कि -

कवि ने जानबूझ कर , छन्द की मात्रापूर्ति के लिए शब्दों को तोड़ मरोड़ कर रख दिया है । जैसे वीरत्व के स्थलों में शब्दों के मिलन के लिए यह तरीका अपनाया गया है । शब्दों के मूल रूप पहचाने जा सकते हैं ।

* शब्दयोजना : ओजपूर्ण :

'बीरसपूर्ण वर्णन के स्थानों में ओजपूर्ण डिंगल भाषा का प्रयोग मिलता है । द्वित्व प्रवृत्ति, प्राकृताभास, अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग हुआ है । ट वर्ग की प्रचुरता है । डिंगल की सभी विशेषताएँ मिलती हैं ।

उदाहरण देखिए :

बज्जै बर कोहं लग्गे लोहं छक्कै, छोहं तजि मोहं ।

सूरा तन सोहं स्वामिन दोहं मत्ते टोहं रिनं डोहं ॥

बर बांन बिछुट्टै बगतर फुट्टै पारन छुट्टै, अहुट्टै घर तुट्टै ।

तरवारनि तुट्टै धम्मर लुट्टै अंग अहुट्टै महि झुट्टै ॥

* शब्दयोजना : मधुर :

'सौन्दर्य या शृंगार वर्णन में ललित एवं मधुर शब्दयोजना है '

ऐसे स्थानों में तत्सम या संस्कृत/ प्राकृत से अद्‌भुत अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग है । जैसे यह नारी -सौन्दर्य वर्णन काफी सुन्दर हुआ है ।

मनहुँ कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय ।

बाल बैस ससि ता समीप अमृत रस पिन्निय ।

बिगस कमल स्रिंग भ्रमर बेनु षंजन मृग लुट्टिय ।

हरि, कीर अरु बिम्ब मोति नष सिष अहि घुट्टिय ॥

* अतएव 'रासो' में भाषा की तीन अवस्थाएँ स्पष्ट हैं :

प्राकृत -एक- अपभ्रंश शब्दावली (तत्सम शब्द भी) ।

दो -विकसित शब्दावली और

तीन - आधुनिक शब्द रूप ;

जैसे - सषियन संग खेलत फिरत महलनि बाग निवास

सुक देखत मन में हंसे कियो चलन को साज ॥

अतएव 'रासो' की एक विशेषता इसके शब्द भंडार का प्राचुर्य, भाषा की विविध रूप भावानुकूल शब्दयोजना, आदि हैं जो उसकी दुर्बलता नहीं बल्कि सरसता और संपन्नता के लक्षण हैं ।

2.8 अभ्यास प्रश्न:

1. चंद बरदाई और पृथ्वीराज के जीवन की प्रमुख घटनाओं की चर्चा कीजिए ।
2. चंद बरदाई और पृथ्वीराज चौहान की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।
3. 'पृथ्वीराज रासो' की विषय -वस्तु की ऐतिहासिकता की परीक्षा कीजिए ।
4. रासो परंपरा पर विचार कीजिए ।
5. 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता/अप्रमाणिकता की समीक्षा कीजिए ।
6. एक महाकाव्य के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' की समीक्षा कीजिए ।
7. वीरकाव्य के लक्षणों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की परीक्षा कीजिए ।
8. शशिव्रता के रूप सौन्दर्य और चारित्रिक गुणों की चर्चा कीजिए ।
9. 'पृथ्वीराज रासो' की लोकप्रियता उसकी काव्यात्मकता पर टिकी है - प्रमाणित कीजिए ।
10. चंद बरदाई ने अपने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन कैसे किया है, समझाइए ।
11. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा पर भिविन्न विद्वानों के मतों का आकलन कीजिए ।
12. 'पृथ्वीराज रासो' की महत्ता पर प्रकाश डालिए ।
13. ''तत्कालीन परिस्थितियों में 'पृथ्वीराज रासो' ही प्रतिनिधि रचना है'' - सिद्ध कीजिए ।

❋ संक्षिप्ति उत्तर दीजिए

1. चंद बरदाई की चारित्रिक विशेषताओं की चर्चा कीजिए ।
2. पृथ्वीराज के वीरत्व का वर्णन कैसे किया गया है ?
3. 'पृथ्वीराज रासो'को अप्रामाणिक क्यों कहते हैं ?
4. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा पर टिप्पणी कीजिए ।
5. 'पृथ्वीराज रासो' की लोकप्रियता के क्या कारण हैं ?

❋ अति संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

1. पृथ्वीराज का युद्ध किसके साथ हुआ, जहाँ वह मारा गया ?
2. वीरचन्द कौन था ?
3. 'पृथ्वीराज रासो' वीरकाव्य है या श्रृंगारिक ?
4. 'पृथ्वीराज रासो' का नायक कौन है ?
5. 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी ही नहीं, भारतीय भाषाओं का एक अप्रतिम ग्रंथ है , क्यों ?

संदर्भ ग्रंथसूची

- पृथ्वीराज रासो, चंद्रप्रकाश गुप्त, वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 2003.
- पृथ्वीराज रासो, चंद्रप्रकाश गुप्त, साहित्य भवन, लखनऊ- 2008.
- पृथ्वीराज रासो, मंगतराम शर्मा, विश्वविद्यालय प्रेस, कोलकाता- 2016.
- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2005.
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2015.
- हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2006.
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ.जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2006.

UNIT - III

चर्यागीति

पद - 1-10

इकाई -3 (चर्यागीति)

विषय सूची

3.0 प्रस्तावना

3.1 बौद्ध -सिद्धों का परिचय

3.2 चर्यापद का परिचय

3.2.1 चर्यापद

3.2.2 प्रकाशित ग्रंथ

3.3 चर्यापद की भाषा

3.4 **सिद्धों की विचारधारा**

3.4.1 अनुभूति पक्ष पर जोर

3.4.2 सहज साधना

3.4.3 शास्त्रज्ञान का खंडन

3.4.4 वर्णाश्रम का विरोध

3.4.5 गुरुमहिमा

3.4.6 रहस्यात्मक वर्णन

3.5 चर्यागीति की विशेषताएँ

3.6 चर्यापद

3.6.1 व्याख्या

3.7 अभ्यास प्रश्न

चर्यागीति

3.0 प्रस्तावना :

यह ज्ञात है कि बौद्धधर्म दार्शनिक चिंतन और आचार-विचार के आधार पर दो शाखाओं में विभाजित हुआ है - हीनयान और महायान । हीनयान के समर्थक तपस्या, संयम, ज्ञान-चर्चा, नैष्ठिक और पवित्र जीवन यापन पर बल देते थे । जबकि महायान अधिक उदारवादी दृष्टकोण का समर्थक था । इसलिए यह ज्यादा लोकप्रिय हुआ । महायान कालक्रम से सहजयान, वज्रयान, तंत्रयान, मंत्रयान आदि साधना -पद्धतियों में विकसित होता गया । पूर्वी भारत में बौद्ध सिद्धाचार्यों का एक दल था जो वज्रयानपंथी था । ये लोग तान्त्रिक साधनाएँ करते थे और प्रज्ञोपायात्मक युगनद्ध द्वारा सिद्धि प्राप्त करते थे । इनकी संख्या 84 बतायी जाती है । इनकी कई सूचियाँ मिलती हैं, जिनमें भिन्नता है । फिर भी कई नाम सभी सूचियों में मिलते हैं । इनके संबंध में अनेक ऐतिहासिक संकेत तो मिलते हैं, मगर लिखित और प्रामाणिक सामग्री बहुत कम है । इसलिए इनके कालक्रम, जीवन -वृत्त आदि के बारे में काफी अस्पष्टता है । इनका समय 800 से 1100ई. तक अनुमानित किया जाता है । प्रथम सिद्ध के रूप में मतभेद है, फिर भी सरहपा को अधिकांश लोग प्रथम वज्रयानी सिद्ध मानते हैं । सिद्धों का मुख्य आवास पूर्व भारत था । परंतु इनके साधना -केंद्र सारे देश में बिखरे हुए थे । उनको सिद्धपीठ कहा जाता था । ओड़ियान, कामरूप, पूर्णगिरि, अर्बुद, तथा श्रीहट्ट ऐसे पीठ थे । कुछ सिद्ध नालन्दा और विक्रमशिला के विद्यापीठ में रहते थे ।

3.1 बौद्ध-सिद्धों का परिचय :

सिद्ध वह माना जाता जो साधना में निष्णात था, अलौकिक सिद्धियों का अधिकारी था तथा चमत्कारपूर्ण और अतिप्राकृतिक शक्तियों से युक्त था । भारतीय अनुश्रुतियों में सिद्धों की प्रख्यात परंपरा है । सिद्ध अजर और अमर माने जाते थे । देवों, यक्षों, डाकिनियों आदि के स्वामी माने जाते थे । तांत्रिक युग में लगभग प्रत्येक संप्रदायों में सिद्धों की सूचियाँ मिलती हैं । किन्तु हिंदी साहित्य में 'सिद्ध' शब्द का अर्थ बौद्ध व्रजयानी सिद्ध ही हैं' ।

3.2 चर्यापाद का परिचय:

3.2.1 चर्यापद :

'चर्या' का अर्थ है साधना -पद्धति या जीवन शैली । 'चर्यापद' बौद्ध तान्त्रिक चर्या के समय गाये जाने वाले पद हैं, जो विभिन्न सिद्धाचार्यों द्वारा लिखे गये हैं । इनको एक साथ संगृहीत कर दिया गया है । इनकी भाषा पूर्वी अपभ्रंश है । इनकी बौद्ध तांत्रिक साधनाओं को मान्यता दी गई । कुछ दोहे भी मिलते हैं । जिनकी भाषा शौरसेनी अपभ्रंश है । ये सब सिद्ध साहित्य कहलाता है । शैव साधना पद्धति के सिद्धों को 'नाथ' कहा जाता है ।

बौद्ध सिद्धों के बाद शैव नाथों का आविर्भाव हुआ है ।

3.2.2 प्रकाशित ग्रंथ :

सिद्धों की रचनाएँ मुख्यत: काव्य रूपों में मिली हैं । इसलिए इन्हें चर्यागीत या चर्यागीति कहते हैं । सन् 1907 में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल से सिद्धों के 50 पदों का एक संग्रह मिला । दस वर्ष बाद उन्होंने उसे बंगीय साहित्य परिषद, कोलकाता से प्रकाशित कराया । नाम रखा -बौद्धगान ओ दोहा । इसमें चर्यापदों के अतिरिक्त 'सहजन्नाय पंजिका' तथा काण्डपा का दोहाकोष (मेखला टीका सहित) भी संगृहीत था । शास्त्री जी ने चर्यादसंग्रह का नाम रखा था ' चयाचर्य विनिश्चय' विधुशेखर शास्त्री ने इसका नाम रखा ' आश्चर्य चयाचय' किन्तु पाठ संशोधन का स्तुत्य कार्य प्रबोधचन्द बागची ने किया । उन्होंने तिब्बती भाषा के रूपान्तरों की मदद ली और उसी परंपरा के अनुसार नाम रखा 'चर्यागीतिकोष' । बागची ने इस 'चर्याकीर्तन कोष' नाम से 1956 को विश्वभारती, शांतिनिकेत से प्रकाशित भी कराया, जो आज सुलभ है । महापंडित राहुल सांकृत्यायान को अपनी तिब्बत यात्रा से सरहपा का 'दोहाकोश' मिला । उन्होंने उसे इसी नाम से बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से प्रकाशित कराया है । इस समग्र साहित्य से सिद्धों की साधना, दर्शन, विचार ज्ञात होते हैं । उनके पदों में मानविकता का जो आवेदन है, वह अनूठा है, अनमोल है ।

3.3 चर्यापद की भाषा :

संध्याभाषा :

ध्यान देने की बात है कि चयापदों को ठीक से समझना जरूरी है । क्योंकि इनकी भाषा सामान्य है, पर अंतर्निहित अर्थ गंभीर है । सिद्धों की भाषा तत्कालीन साहित्यिक भाषा अपभ्रंश है । उसमें पूर्वीपन है । इसलिए उसे पूर्वी अपभ्रंश भाषा भी कहा गया है । (द्र. पूर्वी अपभ्रंश भाषा' राधाकान्त

मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1993) । लेकिन इस भाषा को सहज ही एक नाम मिल गया था -संध्या भाषा । शास्त्रीजी आदि ने उसे 'आलो आंधारेर भाषा' भी कहा है । संध्या का तात्पर्य 'अभिसंधि' से है, अर्थात् एक 'आंतरिक अर्थ' । क्योंकि पदों में एक तो ऊपरी अर्थ मालूम होता है, पर उसका एक दूसरा अर्थ विचार करने पर ज्ञान होता है । इसे हम एक 'सोद्देश्य भाषा' भी कह सकते हैं । यानी कूटभाषा । इन पदों में अर्थ भरने के लिए, वज्रयानी दर्शन को समझाने के लिए अद्‌भुत बिम्ब -विधान किया गया है, प्रतीकात्मकता का सहारा लिया गया है । पद सभी गेय हैं । अनेक रागों में बंधे हैं । हिन्दी में कबीरदास, सूरदास आदि की उलटवाँसी या कूट पद इसी परंपरा के हैं ।

3.4 सिद्धों की विचारधारा :

3.4.1 अनुभूति पक्ष पर जोर :

बौद्ध धर्म का उदय वैदिक धर्म के विरुद्ध हुआ था । बुद्धदेव ने वैदिक यज्ञविधान और कर्मकांड का परित्याग करने और संयम, तप आदि के द्वारा शुद्ध और पवित्र जीवन जीने का आह्वान किया था । हीनयान मत उसीके अनुरूप चला । लेकिन महायान अधिक स्वाभाविक और सरल जीवन -शैली के पक्ष में था । आगे चल कर वज्रयान ने उसे सामान्य जन जैसा जीवन बना दिया । सिद्धों ने बाह्य आडंबरों का विरोध किया और अन्तस्साधना पर बल दिया । उन्होंने शास्त्रज्ञान, पांडित्य का प्रत्याख्यान किया और सहज ज्ञान को स्वीकारा । साधारण ज्ञान का सहारा लेने पर तुरंत मालूम हो जाता है कि इस शरीर में ही बुद्ध बसता है । उसे बाहर ढूंढने, नाना पूजा-व्रत में प्राप्त नहीं किया जा सकता है । इसलिए वैदिक ज्ञान और कर्मकांड में उलझा पंडित सचमुच ज्ञानी नहीं है, बल्कि वह तो 'बढ़' (महामूर्ख) है । चर्यापद में कहा गया है -

पंडिअ सअल सत्त बक्खागई । देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ ॥
अमणागमण न तेन बिखंडिअ । तोवि गिलज्ज भणई हउँ पंडिअ ॥

(पंडित सरल शास्त्रों का व्याख्यान करता है । लेकिन इतना नहीं जानता कि इस देह में बुद्ध बसते हैं । आवागमन चक्र को उसने खंडित नहीं किया । फिर भी निर्लज्ज अपने को पंडित कहता है ।)

सरहपाद कहते हैं मन को बाहर सांसारिक सुख दु:ख में मत भटकाओ । क्योंकि बाहर सुख नहीं मिलता । अंतस्साधना द्वारा ही परम सुख प्राप्त होता है । यह सहज-साधना है । सहज और स्वाभाविक मनुष्य के रूप में जीना । संयम-नियम, व्रत-उपवास आदि की जरूरत नहीं है । ब्रह्म स्थूल में नहीं है, सूक्ष्म मानसिकता में है -

जहि मण पवण न संचरइ, रवि ससि जाह पबेस ।

तहिं पढ़ चित्त विसाम करु, सरह कहिउ उएस ॥

(जहाँ मन और पवन भी नहीं पहुँच सकते, जहाँ सूर्य और चन्द्रमा का भी प्रवेश नहीं है, वहीं अपने मन को ले जाओ । सरह का यह उपदेश है ।)

3.4.2 सहज साधना :

वज्रयान को सहजयान ही कहा जाता है, क्योंकि ये सिद्ध सहज, स्वाभाविक जीवन-यापन करने के पक्ष में थे । 'सुख से खाते-पीते व रमण करते हुए, सृष्टि के चक्र का पूर्णत: अनुसरण करते हुए परलोक की सिद्धि एवं इस लोक के भय के निराकरण को 'सहज साधना' कहते हैं । यह सहज साधना सूक्ष्म आध्यात्मिक अलौकिक साधना थी, जो सूक्ष्म रूप में आत्मा -परमात्मा के मिलन के रूप में प्रतिष्ठित थी । परंतु बाद में यह व्यभिचार में परिणत हो गई । रहस्यात्मकता के कारण ही इसमें अनेक विकृतियाँ आई ।

3.4.3 शास्त्रज्ञान का खंडन :

सरहपाद की तरह कण्हपा भी वेद -पुराण से प्राप्त ज्ञान की निंदा करते हैं । ऐसा ज्ञान तो उपरी ज्ञान है । भीतर पैठने से ही असली ज्ञान मिलता है । जैसे नारियल में पानी तो भीतर रहता है और उसे पाने के लिए भौंरे बाहर ही मंडराते रहते हैं -

आगम -वेअ-पुणेहि, पंडिअ माण बहन्ति ।

पक्क सिरीफले सलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥

सिद्धों ने शास्त्र ज्ञान को उस सीमा तक उपयोगी माना है, जिससे यह पता चल जाय कि यह शास्त्र तो पाखंड है, अतएव इसका खंडन किया जा सके -

अक्खर बाढ़ा सअल जगु, णाहि निरक्खर कोई ।

ताव से अक्खर घोलिया, जाव निरक्खर होई ॥

(सकल जगत् अक्षर शास्त्र ज्ञान से बंधित है । निरक्षर कोई नहीं है । इसलिए उतना ही अक्षर घोलो = उतना ही शास्त्र ज्ञान प्राप्त करो, जिससे निरक्षरता प्राप्त हो = शास्त्र ज्ञान का खंडन किया जा सके ।)

3.4.4 वर्णाश्रम का विरोध :

सिद्धों ने वर्णाश्रम धर्म, जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच, धनी-गरीब या किसी तरह के भेदभाव का विरोध किया । सरहपा तर्क देते हैं - 'ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे, तब हुए थे, इस समय तो वे भी दूसरे लोगों की तरह उत्पन्न होते हैं । तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ ? यदि कहा जाय कि संस्कार से ब्राह्मण होता है तो चाण्डाल को भी संस्कार दो, वह भी ब्राह्मण हो जाएगा ।'' चूँकि अधिकांश सिद्ध नीच जाति से थे, उन्हें किसी भी भेदभाव का सहन नहीं हो सकता था ।

3.4.5 गुरु महिमा :

चूँकि वज्रयानी साधनाएँ गुह्य(गुप्त) रहस्यात्मक होती थीं, अत: पहुँचे हुए गुरु की निगरानी में साधना करना चाहिए । सतगुरु ही इस कठिन मार्ग से शिष्य को ले जा सकता है । इसलिए सिद्धों के वज्रयान मार्ग में गुरु और शिष्य के संबंध को बहुत ज्यादा महत्व दिया जाता है । गुरु तो ज्ञानी हो यह आवश्यक है । जब तक व्यक्ति अच्छा ज्ञानी न हो जाय तब तक उसे किसी को शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए । एक अंधा दूसरे अंधे को कुएँ से बाहर कैसे निकाल सकता है ? सरह तो कहते हैं कि गुरु और शिष्य दोनों को ज्ञानी होना चाहिए ।

जाण ण आप जगिज्जइ, ताव ण सिस्स करेई ।
अन्धा अन्ध कढव तिम, वेणण वि कूप पडेई ॥ (दोनों कुएँ में गिरेंगे)

3.4.6 रहस्यात्मक वर्णन :

सिद्धों की कमलकुलिश साधना, सहज -साधना, महासुख, नैरात्मसाधना आदि अनेक अनुभूतियों को रहस्यात्मक शैली में प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त किया । जल्दी ही, सिद्धमार्ग सांसारिक वासनाओं की पूर्त्ति , स्वेच्छाचारी जीवन, अनेक नारी-संगम खासकर नीच जाति की स्त्रियों के साथ संपर्क स्थापन इत्यादि के कारण आध्यात्मिक मार्ग से च्युत हो गया । पंच मकार का अर्थ अलग था । लेकिन बाद में वह मुद्रा (स्त्री), मद्य, मांस, मत्स्य और मैथुन हो गया । प्रेम तत्त्व, दांपत्य भाव, आत्मा-परमात्मा के संबंध के संप्रेषण के साधन थे, परंतु वे सांसारिक संपर्क और कामुकता में बदल गया । भ्रष्टाचार बढ़ गया और सिद्ध मार्ग का संस्कार करने के लिए गोरखनाथ ने नाथपंथ की स्थापना की, जिसमें संयम, सहजानुभूति, ज्ञान, तपस्या, हठयोग साधना आदि पर बल दिया गया । भोग के स्थान पर योग मुख्य हो उठा । इसके बावजूद सिद्धों के विचार और काव्यगत विशेषताओं का मूल्य कम नहीं हुआ ।

3.5 चर्यागीत की विशेषताएँ :

1. व्यगतिगत अनुभूति - साधनाएँ रहस्यात्मक थी । अतएव अनुभूति भी व्यक्ति की ही होती है ।
2. लोक भाषा का प्रयोग - साधारण जनता को आकृष्ट करने में सफलता मिली । लेकिन सिद्धों की भाषा रहस्यात्मक है । उसका गंभीर अर्थ होता है ।
3. बह्याचार, जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का प्रत्याख्यान कर - मानववाद की प्रतिष्ठा की है
4. सामान्य जीवन यापन की शैली
5. आंतरिक भावना, प्रेम, श्रद्धा आदि मानसिक भावों पर जोर
6. गुरु की महिमा की स्वीकृति - क्योंकि बिना गुरु के आध्यात्मिक साधना -मार्ग में चलना असंभव है ।
7. चामत्कारिक शक्तियों का अधिकार और उनका वर्णन ।

आगे सिद्धों के कुछ चर्यापदों के उदाहरण देकर इन प्रवृत्तियों का प्रतिफलन कैसे हुआ, यह बताया गया है ।

3.6 चर्यापद :

चर्यागीतिकोष :

नमः श्रीवज्रयोगिन्यं ॥

1

(राग पटमंजरी लुइपादानाम्)

काआ तरुवर पंच की डाल ।
चंचल चीए पाइठा काल ॥1॥

दिढ़ करुअ महासुह परिमाण ।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥ध्रुवपद॥

सअल समाहिअ काहि करिअइ ।
सुख दुखे ते निचित मरिअइ ॥2॥

एडिअउ छान्दक बान्ध करण कपटेर आस
सुनुपाख भिड़ि लेहु रे पास ॥3॥

भणइ लुइ आम्हे झाणे दिठा
धमण चमण बेणि पाण्डि बइठा ॥4॥ध्रु ॥

2.

(राग गवड़ा कुक्कुरीपादानाम्)

दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ ।
रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ ॥1॥

आंगण घरपण सुन भो विआती ।
कानेट चौरो निल अधराती ॥(ध्रुवपद)॥

सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ
कानेट चोरे निल का गई मागअ ॥2॥(ध्रु.)

दिवसइ बहुड़ी काउइ डरै भाअ ।
राति भइले कामरू जाअ ॥3॥ (ध्रुवपद)

अइसन चर्या कुक्कुरी पाएँ गाइड़ ।
कोड़ि माझें एकु हिअहिं समाइड़ ॥4॥(ध्रुवपद)

3.

(राग गवड़ा विरुवापादानाम्)

एक से शुण्डिनि दुइ घरै सान्धअ
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ ॥1॥

सहजै थिर करि वारुणी सान्धे ।
जँ अजरामर होइ दिढ कान्धे ॥(ध्रुवपद)॥

दशमि दुआरत चिह्न देखइआ ।
आइल गराहक अपणे बहिआ ॥2॥(ध्रुवपद)

चउशटी घड़िये देल पसारा ।
पइठेल गराहक नाहि निसारा ॥3॥(ध्रुवपद)

एक घड़ुली सरुइ नाल ।
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल ॥4॥(ध्रुवपद)

4.

(राग अरु गुण्डरीपादानाम्)

तिअड्डा चापी जोइणि दै अंकचाली ।
कमल कुलिश घाण्ट करहु बिआली ॥1॥

जोइनि तँइ बिनु खणहिं न जीवमि ।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवमि ॥(ध्रुवपद)॥

खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ ।
मणिकुले बहिआ ओड़िआणे समाअ ॥2॥(ध्रुवपद)

सासु घरै घालि कोंचा ताल ।
चान्द सुज बेणि पखा फाल ॥3॥(ध्रुवपद)

भणइ गुण्डरो अम्हे कुन्दुरे वीरा ।
नरअ नारी माझें उभिल चीरा ॥4॥(ध्रुवपद)

5.

(रागगुज्जरी चाटिल्लपादानम्)

भवणइ गहण गम्भीर वेगें वाही ।
दु आन्ते चिखिल मज्झे न थाही ॥1॥

धामार्थ चाटिल सांकम गढ़इ
पारगामि लोअ निभर तरइ ॥(ध्रुवपद)॥

फाड्डिअ मोहतरु पटि जोडिअ ।
अदअ दिढ टांगी निबाणे कोहि (डि)अ ॥2॥(ध्रुवपद)

सांकमत चड़िले दाहिण बाम मा होही ।
नियड्डी बोहि दूर मा जाही ॥3॥(ध्रुवपद)

जइ तुम्हे लोअ हे होइब पारगामी ।
पुच्छह चाटिल अनुत्तर सामी ॥4॥(ध्रुवपद)

6.

(राग पटमंज्जरी भुसुकुपादानम्)

काहे रे घेणि मेलि अच्छहु। कीस ।
वेढ़िलहाक पड़अ चौदीस ॥1॥

अपणा मांसे हरिणा वैरी ।
खणह न छाड़अ भुसुक अहेरी ॥(ध्रुवपद)॥

तिण न च्छुपइ हरिणा पिबइ न पाणी ।
हरिणा हरिणीर निलअ न जाणी ॥2॥(ध्रुवपद)

हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो ।
ए वन च्छाड़ी होहु भान्तो ॥3॥(ध्रुवपद)

तरसँन्ते हरिणार खुर न दीसइ ।
भुसुकु भणइ मूढ हिअहि न पइसइ ॥4॥(ध्रुवपद)

7.

(रागपटमंज्जरी काह्न पादानम्)

आलिएँ कालिए बाट रुन्धेला ।
ता देखि काह्नु बिमन भइला ॥1॥

काह्नु कहिं गइ करिब निवास ।
जो मनगोअर सा उआस ॥(ध्रुवपद)॥

ते तिनि ते तिनि हो भिन्ना ।
भणइ काह्नु भव परिच्छिन्ना ॥2॥(ध्रुवपद)

जे जे आइला तेते गेला ।
अयणागवणे काह्नु विमन भइला ॥3॥(ध्रुवपद)

हेरि से काह्नि निअड़ि जिनउर वट्टइ ।
भणइ काह्नु मो हिअहि न पइसइ ॥4॥

8.

(राग देवकी कम्बलाम्बर पादानम्)

सोने भरिती करुणा नावो ।
रूपा थोइ नाहिक ठावो ॥1॥

बाहतु कामलि गअण उबेसे ।
गेला जाम बाहुड़इ कइसें ॥(ध्रुवपद)॥

खण्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
चाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥2॥

मांगत चढ़हिले चउदिस चाहअ ।
केडुआल नाहि के कि वाहक्के पारअ ॥3॥(ध्रुवपद)

वामदाहिण चापी मिलि मिलि मांगा ।
बाटत मिलिल महासुख सांगा ॥4॥(ध्रुवपद)

9.

(रागपटमञ्जरी काहनुपादानम्)

एवंकार दिढ़ बाखोड़ मोड़िउ ।
विविह विआपक बान्धन तोड़िउ ॥1॥

काह्नु विलसअ आसवमाता ।
सहज नलिनोचन पइसि निविता ॥(ध्रुवपद)॥

जिम जिम करिणा करिणिरे रिसअ ।
तिम तिम तथता मअगल बरिसअ ॥2॥(ध्रुवपद)

छढ़गइ सअल सहावे सूध ।
भावाभाव वलाग न छुध ॥3॥(ध्रुवपद)

दशबलरअण हरिअ दशदिसें ।
अविद्याकरिकुँ दम अकिलेसें ॥4॥(ध्रुवपद)

10.

(राग देशाख काह्न पादानम्)

नगर बाहिरे रे डोम्बि तोहोरि कुड़िआ ।
छोइ छोइ जाहि सो बाह्मण नाड़िआ ॥1॥

आलो डोम्बि तोए सम करिबो मो सांग ।
निघिन काह्न कापालि जोइ लांग ॥(ध्रुवपद)॥

एक सो पदुमा चौषठी पाखुड़ी ।
तहिं चड़ि नाचअ डानेम्बी बापुड़ी ॥2॥(ध्रुवपद)

हालो डोम्बी तो पूछमि सदभावे ।
आइससि जासि डाम्बि काहरि नाबें ॥3॥(ध्रुवपद)

तान्ति विकणअ डोम्बी अचर ना चांगेड़ा ।
तोहोर अन्तरे छाड़ि नड़ पेड़ा ॥4॥

तु लो डोम्बी हाउँ कपाली
तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाड़ेरि माली ॥5॥(ध्रुवपद)

सरोवर भाज्जिअ डोम्बी खाअ मोलाण ।
मारिमि डाम्बी लेमि पराण ॥6॥(ध्रुवपद)

3.6.1 व्याख्या

चर्या - 1

शरीर एक वृक्ष के सदृश है । इसकी पांच शाखाएँ हैं - रूपादि पांच विषय(रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध ।) फिर मन केसाथ पांच ज्ञानेन्द्रिय (चक्षु, कर्ण, त्वक् नासिका, रसना) सर्वदा जागतिक भोग -लालसा में चंचल रहने के कारण पल्लव के रूप में स्वीकृत हैं ।

कुछ आधुनिक टीकाकार पंच शाखा को पंचेन्द्रिय -मानते हैं (काण्हुपा ने मन को तरु और पंचेन्द्रियों को शाखा मान कर लिखा है - ' मणतरु पंच इन्दि तसु साहा ।'

जैसे शाखा पल्लवादि के निरंतर दोलन से वृक्ष हिलहिल कर धीरे-धीरे मृत्यु को प्राप्त होता है, वैसे ही सांसारिक सुख -भोग में प्रमत्त शरीर भी मृत्यु की ओर जा रहा है ।

इसलिए 'लुइ उपदेश देते हैं कि गुरु को जिज्ञासा करके उनसे चित्त चांचल्यनाशक उपाय सीखो इससे चित्त में दृढ़ता और एकाग्रता आएगी । तब तुम महासुख का भोग कर सकोगे । यह कठिन काम नहीं, सहज है, आसान है । इसके लिए कठिन साधना, योग, ध्यान, सामधि आदि की जरूरत नहीं है । सच में, योग समाधि द्वारा समाधि में शांति नहीं आती । क्योंकि समाधि की अवस्था में जिन सुख, शांति आदि की उपलब्धि होती है, वे सब समाधि से उठ जाने पर नष्ट हो जाते हैं । इस लिए आखिरकार दु:ख -सुख भोग करते हुए मृत्यु के मुख में ही जाना पड़ता है । मुद्रा, आसन, बन्ध इत्यादि साधन द्वारा महासुख की आशा छोड़ दो (अथवा - वासना का बंधन, इंद्रिय -सुखभोग आदि) एक ही सहज उपाय है शून्य पंथा का अवलंबन करना । अपने को दृढ़ता के साथ उस मार्ग में स्थापित कर अखंड प्रशांति के साथ महासुख का आस्वादन करो । आखिर में लुइ कहते हैं - धमण चमण अर्थात् श्वास- प्रश्वासवाही दो नाड़ियों रूपक आसन -पीठिका पर अर्थात् प्राणायाम योग से ध्यानस्थ होकर महासुख लाभ का यह सहज साधन प्राप्त किया है । चित्त की अस्थिरता को दूर करके काया तरुवर को कालमुख से बचाने का यह सहज उपाय है ।

चर्या -6

भूसुकपाद

काहेरे भेलि कीस

कवि एक हरिण से कहता है - रे हरिण । तू अब किसका आश्रय लेकर और किसकी अवहेलना करके अपनी जान बचाएगा ? चारों ओर से अहेरियों की हाँक सुन । वे तुझे घेर चुके हैं । तेरा मांस ही तेरा शत्रु है । शिकारी भूसुक तेरे मांस के लोभ से तुझे क्षण भर को भी नहीं छोड़ेगा । ऐसी अवस्था में पड़कर हरिण भूख-प्यास तक भूल जाता है । वह नहीं जानता कि उसकी प्राणप्यारी हिरनी कहाँ है । जीवन के इस आखिर पल में उससे मुलाकात हो जाती ! इतने में हिरणी की अनुयोग भरी वाणी सुनाई पड़ी - हे हिरण, तू इसी क्षण इस वन को छोड़कर भाग जा । यह सुनते ही हिरण चौकड़ी भरकर भाग निकला । दौड़ने में उसका खुर मिट्टी को छूता भीन्न था, मालूम नहीं ।

हरिण = चित्त । हिरणी = ज्ञानमुद्रा, नैरात्मा । । मांस = अविद्या । मात्सर्यादि = दोष । हरिणी -निकाय = महासुख चक्र । वन = काया । तृण पाणि = सांसारिक भोग । अहेरी = सद्गुरु वचन - वाणधारी साधक ।

मृत्यु और मार के द्वारा घिरे जाकर मार मार हाँक सुखकर चंचल चित्त किसे पकड़े और किसे छोड़े ? अविद्या और मात्सर्यादि दोषों के कारण चित्त अपना सर्वनाश करता है । यह जानकर भूसुक गुरुवचन से सतर्क रहता है । वह सांसारिक सुख छोड़ ज्ञानमुद्रा । नैरात्मा के निवास या महासुख चक्र में प्रवेश करने को उत्कंठित होता है । योगी की एकनिष्ठ साधना और विकल - कामना देख स्वयं नैरात्मा उसे आह्वान करती है - 'साधक , स्थूलकाया छोड़ भ्रंतिशून्य महासुख चक्र में प्रवेश करो ।'

भूसुक कहते है - मूर्खों को यह मालूम नहीं होता ।

चर्या -7

कण्हपा = काण्हुपाद

आलिएँ कालिएँ ताट रुन्धेला

विमन = विशिष्ट मन

आलि(इड़ा) और कालि (पिंगला) के रूंधने से (बन्द करने से) अवधूती (शक्ति) का बाहर निकलना बन्द हो गया । इसीसे वह प्रकृति जैसी शुद्ध रूपा हो उठी । कान्हुपा उसे देखकर विशिष्टमन हुए, परिशुद्ध मनवाले हुए । कान्हुपा और कहीं जाकर बसने की जरूरत नहीं है । अपने अन्तर में ही वे परम आनन्दमय महासुख का संधान पा गए । लेकिन जो योगीगण मन -इन्दियों द्वारा बाह्य जगत में सुखमय स्थान का अन्वेषण करते हैं, वे उदास रहते हैं, उन्हें वैसा स्थान नहीं मिलता । उनके निकट स्वर्गमर्त्यपाताल अथवा कायवाक्चित्त अलग -अलग दिखाई पड़ते हैं । वे संसार के जन्ममृत्यु वंधन को देखते हैं । उनका मन विचलित रहता है । किन्तु सहज साधक इन सबके ऊपर निर्लिप्त होता है । कान्हु इसी भाव में निमग्न होकर विशिष्ट मन हुए । वे आनन्दमय महासुख के काफी निकट हो गए किन्तु अविद्यासे मोहित चित्त लेकर वहाँ प्रवेश नहीं किया जाता ।

चर्या -9

कान्हुपा

एवंकार दृढ़ बाखोड़ मोड़ि ।

जैसे मदमत्त हाथी बंधन स्तम्भ को तोड़कर, रस्सी तोड़कर पदमवन में प्रवेश कर जाता है, और हस्तिनी के साथ क्रीड़ा करने लगता है, वैसे ही कान्हुपा एवं वाम -दक्षिण नाड़ी) रूपक दो स्तम्भों को तोड़कर और सारे सांसारिक बंधनों को छिन्न -भिन्न करके सहज पद्म वन में प्रवेश करते हुए निर्विकल्प होकर सहज सुन्दरी नैरात्मा के साथ विलास कर रहे हैं । प्रेमोन्मत्त हस्ती का जैसे मदस्राव होता है , वैसे उनका चित्त गजेन्द्र तथता रूपक मद अर्थात् परम सत्य की वर्षा कर रहा है । यह परम सत्य ही सब कुछ है । वह = कस्य । जागतिक प्रत्येक जीव 'वह' तो स्वभाव शुद्ध है । उसकी स्थिति या लय जरा भी अशुद्ध नहीं है । कान्हु उपदेश देते हैं कि दस बल रूपक रत्नों को दस दिशाओं से आहरण करो और उसी बल द्वारा आसानी से अविद्या मोहित चित्त -हस्ती को दमन करो । चित्त में ज्ञान होने पर बोधिचित्त जाग्रत होने से तुम भी तथता तत्व की उपलब्धि कर सकोगे ।

वाम नाड़ी - चन्द्र - इड़ा - प्रज्ञा

दक्षिण नाड़ी - सूर्य, पिंगला - उपाय

महासुख मद्म = नाभि स्थित निर्माण चक्र में 64 पंखुड़ियों वाला पद्म

हृदय स्थित धर्मचक्र का पद्म 31 पंखुड़ियाँ

कंठस्थ संभोग चक्र पद्म 16 पखुड़ियाँ हैं

तथता - वह कैसा तथतावाद महायान दर्शन में एक मुख्य तत्त्व है ।

अश्वघोष = शून्य = नेति के साथ तुलनीय साधना क्षेत्र में यह प्रज्ञापारमिता अवस्था है ।

चर्या -10

काण्हुपा

नगर बाहिरे रे डाम्बि तोहरि कुड़िआ

अरी डोम्बी । नगर के बाहर तेरी कुटिया है । तेरे प्रेमप्यासी लंडित भेड़- ब्राह्मणों को तू छू कर ही चली जाती है । मगर आंतरिक प्रेम नहीं देती । अरी डोम्बी , तेरे साथ मित्रता के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ । देखो, लाजशर्म छोड़कर एक नग्रन कापालिक योगी हूँ । मैं तेरी बराबरी का हूँ । मुझ में जाति का अभिमान नहीं है । या मैं कामसुख लोभी नहीं हूँ । तू मुझे सच्चा प्रेमी समझ । डोम्बी तू इस 64 पंखुड़ियों वाले कमल पर नृत्य कर रही है । तेरा यह रूप बड़ा रमणीय है । अरी डोम्बी ! मेरी सौगन्ध, सच बताना, तू कैसे 'पोखर के बीच उस पद्मवन में जाती है । कोई दूसरा प्रेमिक है क्या जो तुझे नाव से ले जाता है । डोम्बी तू अपनी जीविका बाँसों का सामान बनाना छोड़ दे । मैं भी अपना नट का वेश छोड़ चुका हूँ । तू डोम्बी है, अस्पृश्या डोम्ब कन्या है । मैं भी जातिपाँति से बाहर कापालिक हूँ । यह सब तेरे लिए किया है । मैं चाहता हूँ तेरे मेरे बीच कोई विभेद नहीं रहे । अहा, तू इस पोखर में नाचकूद कर विहार करती है, कोमल मृणाल खाती है । यह दृश्य बड़ा लोभनीय है । डोम्बी, मुझे अंगीकार कर ले । नहीं तो मैं प्राण त्याग दूंगा ।

3.7 अभ्यास प्रश्नः

1. सिद्ध कौन थे ? उनकी प्रसिद्धि के क्या कारण हैं ?
2. चर्यापद क्या है, उसका सम्यक् परिचय दीजिए ।
3. चर्यापद की भाषा की विशेषताएँ बताइए ।
4. 'सिद्धों' के विचार विद्रोहात्मक थे' - सिद्ध कीजिए ।
5. सिद्धों की विचार धारा का सम्यक् आकलन कीजिए ।
6. चर्यागीति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।
7. चर्यागीति ने परवर्ती हिंदी काव्य को कैसे प्रभावित किया है, सोदाहरण समीक्षा कीजिए ।

❋ संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

1. 'काआ तरुवर पंचवि डाल' का क्या तात्पर्य है ?
2. सिद्धों ने रूढ़िवाद का खंडन कैसे किया है ?
3. सिद्धों की भाषा की क्या -क्या विशेषताएँ हैं ?
4. सिद्धों का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव कहाँ -कहाँ देखा जाता है ?
5. सहज -साधना क्या है ?

❋ अति संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

1. संध्या भाषा का क्या मतलब है ? एक उदाहरण दीजिए ।
2. सिद्धों ने किन-प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी आध्यात्मिकता का वर्णन किया है ?
3. 'आलिएँ कालिएँ बार रुंधेया' का क्या अर्थ है ?
4. सिद्धों की रहस्यात्मक वर्णन शैली का सीधा प्रभाव कहाँ मिलता है ?
5. सिद्धों की भाषा का क्या -क्या नाम पड़ा है ?

संदर्भ ग्रंथसूची

- चर्यागीति: संस्कृति और साहित्य, राजेंद्र कुमार त्रिपाठी, संजीवनी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2009.
- चर्यागीति कोश, मोहनलाल गोरखपुरी, साहित्य संस्थान, लखनऊ- 2005.
- चर्यागीति: इतिहास और विकास, जयदयाल गोपाल, वाणी प्रकाशन, मुम्बई -2012.
- चर्यागीति: एक समीक्षा, सुनील शर्मा, स्वतंत्र प्रकाशन, जयपुर- 2016.
- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2005.
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2015.
- हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2006.
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ.जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा- 2006.

******